योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 32 सितम्बर, 1999 अंक 6

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
संवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्त श्री
चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

संयुक्त सम्पादक :
श्री भुवनेन्द्र झा

प्रबन्ध सम्पादक :
ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा
चन्द्रशेखर 'दिव्य'
आचार्य चन्द्रहास शर्मा
राजेश कुमार श्रीवास्तव

एक प्रति	रु० 8-00
वार्षिक शुल्क	रु० 75-00
द्विवार्षिक	रु० 140-00
आजीवन	रु० 750-00

इस अंक में

- स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु...... 1
- अमृतकण.................................. 2
- विशेष लेख
  अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज.... 3
- सम्पादकीय.............................. 8
- व्याधि के रहते समाधि कहाँ ?
  चन्द्रहास शर्मा........................ 10
- किमस्ति योगः
  द्वारका प्रसाद शर्मा.................. 16
- गंगापुर सिटी का यौगिक सत्संग
  केशव देव उपाध्याय.................. 20
- गीता जी में भक्ति योग
  डा० स्वामी केशवाचार्य................23
- दैनिक आरती का रहस्य
  केशवदेव उपाध्याय.................... 29
- चुप साधन
  स्वामी रामसुखदास जी............... 33
- वह एक ही जगदीश्वर जगत और जीव.....
  ओम प्रकाश.............................. 35
- लीलाधारी श्री प्रभुजी परीक्षा भवन में...
  मोहन लाल अग्रवाल.................. 39

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 32
अंक 6

सितम्बर
1999

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च
विश्वाधियो रूद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भ जनयामास पूर्व
स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।

(श्वेताश्वतरोपनिषद ।३ ।४)

अर्थात्

जो रूद्र इन्द्रादि देवताओं की उत्पत्ति का हेतु और वृद्धि का हेतु है तथा जो सबका अधिपति और महान् ज्ञानी सर्वज्ञ है जिसने पहले हरिण्यगर्भ को उत्पन्न किया था वह परमदेव परमेश्वर हम लोगों को शुभ बुद्धि से संयुक्त करें।

अमृत कण

(मुण्डकोपनिषद् से)

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयंधीराः पंडित मन्यमानाः।
जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

अविद्या के भीतर स्थित होकर भी अपने–आप बुद्धिमान बनने वाले और अपने को विद्वान मानने वाले वे मूर्ख लोग बार–बार आघात (कष्ट) सहन करते हुए ठीक वैसे ही भटकते रहते हैं जैसे अंधे के द्वारा ही चलाये जाने वाले अंधे अपने लक्ष्य तक न पहुँचकर बीच में ही इधर–उधर भटकते और कष्ट भोगते रहते हैं।

* * *

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना
वयं कृतार्था इत्यभिमन्यति बालाः।
यत्कर्मिणी न प्रवेदयन्ति रागात्
तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते॥

वे मूर्ख लोग उपासनारहित सकाम कर्मों में बहुत प्रकार से वर्तते हुए हम कृतार्थ हो गये ऐसा अभिमान कर लेते हैं क्योंकि वे सकाम कर्म करने वाले लोग विषयों की सक्ति के कारण कल्याण के मार्ग को नहीं जान पाते इस कारण बारम्बार दुःख से आतुर हो पुण्योपार्जित लोकों से हटाये जाकर नीचे गिर जाते हैं।

* * *

तपः शुद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा॥

किन्तु जो वन में रहने वाले शान्त स्वभाव वाले विद्वान तथा भिक्षा के लिए विचरने वाले संयमरूप तप तथा श्रद्धा का सेवन करते हैं, वे रजोगुण रहित सूर्य के मार्ग से वहाँ चले जाते हैं जहाँ पर वह जन्म–मृत्यु से रहित नित्य अविनाशी परमपुरुष रहता है।

* * *

समाधि के भेद

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

आज समाधि के विषय में कुछ बताएंगे जिससे हमारे बच्चों को समाधि का यथार्थ स्वरूप समझ में आ जाये। समाधि की दो श्रेणियाँ है (१) **सम्प्रज्ञात** और **असम्प्रज्ञात**। सम्प्रज्ञात समाधि वह कहलाती है जिसमें कुछ अनुभव होता रहे कुछ दीखता रहे कुछ न कुछ ज्ञान होता रहे। जिस समाधि में गुरूदेव के, कृष्णचन्द के, श्री राम के, भगवान शिव अथवा अपने–अपने इष्ट के दर्शन होते रहें। असम्प्रज्ञात समाधि वह कहलाती है जिसमें आत्मा अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित रहता है। **'तदा द्रष्टुः स्वरूपऽवस्थानम्'** जिस अवस्था का भगवान ने गीता में निम्न शब्दों में वर्णन किया है–

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयं अविकार्योऽयमुच्यते'।

तथा–

नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
नचैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

अर्थात् आत्मा अच्छेद्य है, अदाह्य है। अविकारी है। उसे शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नही सकती, जल गीला नहीं कर सकता। वायु सुखा नहीं सकती। जिस समाधि में आत्मा अपने विकार रहित अवस्था में अवस्थित रहता है वह असम्प्रज्ञात समाधि है। बुद्धि एवं पुरुष का सम्बन्ध जब तक नही छूटता तब तक आत्मा विकारी जैसा मालूम पड़ता है। वास्तव में आत्मा निर्विकारी है; किन्तु बुद्धि का संयोग होने पर उसमें बौद्धेय ज्ञान रहता है आत्मा प्रत्ययानुपश्य हो जाता है अर्थात् बुद्धि के वृतियों के अनुरूप बन जाता है। जिस प्रकार से एक स्वच्छ शीशे के सामने लाल फूल रख दी। शीशे मे लालिमा आ जायेगी, उसके सामने हरा फूल, रखें शीशे का रंग भी हरा दीखने लगेगा। इसी प्रकार से निर्विकारी आत्मा के सामने बुद्धि का प्रतिबिम्ब पड़ने पर बुद्धि के सुख–दुखादि धर्मों का आत्मा में भी आरोपण किया जाता है। रात–दिन हम जिस सुख–दुःख का अनुभव करते है वह बौद्धेयज्ञान है आत्मिक नहीं। बुद्धि में चेतनता आत्मा से ही मिलती है। इसी से हमारा ज्ञान बुद्धिबोधात्मा वाला है। योग का उद्देश्य स्वरूप प्रतिष्ठा है। असम्प्रज्ञात समाधि में आत्मा का क्या स्वरूप रहता है–व्यास देव जी ने अपने भाष्य में इसका उत्तर दिया है **'चिति शक्तिः यथा कैवल्ये'** अर्थात् मोक्ष के समय जो स्वरूप इसका होता है वही असम्प्रज्ञात में रहता है। असम्प्रज्ञात समाधि में बौद्धेय बोद्ध बिल्कुल नहीं रहता है। बोद्धय ज्ञान का बिलकुल अभाव जिसमें हो जाता है वह असम्प्रज्ञात समाधि होती है–

सम्प्रज्ञात समाधि की आगे चार श्रेणियाँ है।

प्रथम है–**वितर्कानुगत समाधि**

(१) **वितर्कानुगत समाधि— 'वितर्के' चित्तस्य आलम्बने स्थूल भोग:'** अर्थात् जिसमें चित्त के आलम्बन का सहारा स्थूल विषय हो, किसी आकृति का सहारा हो, ज्योति का सहारा हो, चन्द्रबिन्दु आदि–आदि स्थूल लक्ष्य को सामने रखकर ध्यानाभ्यास किया जाता है वह वितर्कानुगत समाधि है दूसरी समाधि का नाम विचारानुगम है।

(२) **विचारानुगत**—यह वितर्कानुगत से सूक्ष्म विषय वाली समाधि है। इसमें मनुष्य स्थूल पृथ्वी महाभूतों को न देखकर—उनके सूक्ष्म तन्मात्र—शब्द स्पर्श—रूप रस—गन्ध का साक्षात्कार करता है। अर्थात् स्थूल पृथ्वी आदि–आदि तत्वों का साक्षात्कार इस समाधि में नहीं होता है। इस समाधि में साधक को तन्मात्र प्रधान दिव्य देव लोक, वैकुण्ठादि लोक लोकान्तर का दर्शन होता है। इन लोकों में स्थूल महाभूतों का अभाव है। जिनमें दिव्य तनुधारी देवता रहते हैं वहाँ सब सूक्ष्म ही सूक्ष्म है। वहाँ पर गन्धादि तन्मात्रा बहुत अधिक मात्रा में होती है। वहाँ मरणधर्म का सवाल पैदा ही नही होता। इस पृथ्वी लोक में हमारे शरीर में जल आदि तत्वों की कमी हो जाने पर आदमी मर जाता है। पञ्चमहाभूत हमारे शरीरों में स्थूल रूप से है विचारानुगत में वह सूक्ष्म रूप वाला हो जाता है किन्तु साधक को आभासित तो ऐसा होगा कि सुन्दर–सुन्दर महल है बाग बगीचे है फूल फल हैं किन्तु ये सब वहाँ पर स्थूल रूप में नहीं होते—मोटा तत्व वहाँ नहीं होता। इस प्रकार मन की एकाग्रता का विषय तन्मात्र प्रधान हो वह समाधि । विचारानुगत समाधि कहलाती है। तीसरी समाधि है—आनन्दानुगत समाधि।

(३) **आनन्दानुगत**—यह वह समाधि है जिसमें महाभाव का उदय हो जाता है। इसमें उत्कृष्ट प्रेम, उत्कृष्ट ज्ञान, उत्कृष्ट आनन्द की उपलब्धि हो जाती है। साधक अपने इष्ट मे लवलीन रहता है बर्फ की ठण्ड का दुःख, आग की तपन का दुःख जिस अवस्था मे योगी को सताते नहीं है वह है आनन्दानुगत। सुख दुःख में वह सम रहता है उसे ये विचलित नही कर सकते हैं।

'सुख–दुःखे समे कृत्वा लाभाला भौ जयाजयौ'।

इस अवस्था में साधक बड़े–बड़े दुःख समझता ही नहीं उसे दुःख दुःखी नहीं कर पाते।

हमारे गुरू भाइयों को बहुत अच्छी–अच्छी अनुभूतियाँ होती थीं एक बार श्री प्रभु जी जम्मू–काश्मीर गये हुए थे। श्री मुल्खराज जी महाराज भी उनके साथ थे। श्री मुल्खराज जी योगध्यान में देखा करते थे कि कोई मुसलमान फकीर आकर श्री प्रभु जी को नित्य प्रणाम किया करता है समाधिवान योगी शक्तिमान के शुद्ध स्वरूप को पहचान लेता है तथा उनके सामने नतमस्तक रहता है। परन्तु यह कौन है कहाँ है इसका मुल्खराज जी को ज्ञान नही था। वह अपने दूसरे गुरू भाइयो से इसकी चर्चा किया करते थे। एक दिन श्री प्रभु जी जम्मू के महाराजा कर्ण सिंह के आमन्त्रण पर उनके महल में गये। शाम को उन्होंने कहा 'महराज ! आज कहीं घूमने चलें। श्री प्रभु जी ने कहा—'चलो आज जेल देख आयें'। श्री प्रभु जी जेल में पहुँच गये। वहाँ पर एक व्यक्ति था जो लोगों को पत्थर मारता तथा पीटता था। लोग उसे पागल ही समझते थे। श्री प्रभु जी को वह प्रतिदिन वहीं से नमस्कार किया करता

रहता था। श्री प्रभु जी ने जेल में पहुँच कर कहा—इसे छोड़ दो यह पागल नहीं योगी है। वह श्री प्रभु जी से कहने लगा परवरदिगार क्या हुकुम है'. ? श्री प्रभु जी बोले— बेटा सामने की इस पहाड़ी पर चढ़ जाओ व समाधि में रत हो जाओ। यह योगी आनन्दानुगत समाधि का योगी था जो हर समय इष्ट में लीन रहता था।

नन्दलाल नाम का एक काश्मीर में योगी रहता था। हमारा एक बार जम्मू में हमारे बच्चे इंजीनियर R.L. Sharma. कर्ण नगर के यहाँ योग प्रचार कार्यक्रम होने वाला था। नन्द लाल उनके घर कोठी पर पहुँच गये! और कहने लगे—कल तुम्हारे यहाँ कोई आ रहे हैं ? कहने लगा। महाराज जी को इस कमरे में ठहराओ। कुर्सी, मेज आदि सब हटा दो। वहाँ लोगों ने तुरन्त उसकी आज्ञा का पालन किया। लोग उनसे बहुत डरते थे। लोगों को दण्ड भी दे दिया करता था। वह जैसा कह देता था वैसा ही हो जाया करता था। दूसरे दिन मैं जम्मू पहुँचा। वह मेरे पास आया प्रणामआदि करके वापिस चला गया। हमारा यह अनुमान है कि यह वही योगी था जिसे प्रभु जी ने जेल से छुड़ाकर पहाड़ी पर भेज दिया था।

दूसरे दिन श्री प्रभु जी कहने लगे 'चलो आज गंदे नाले की ओर चलें'। सभी लोगों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि गन्दे नाली में घूमने का क्या प्रयोजन हो सकता है। श्री प्रभु जी ने मुलखराज जी को आगे—आगे भेज दिया और कहा कि जो तुम्हें रास्ते में मिलेगा वह हमारा बहुत बड़ा भक्त होगा।

श्री मुल्खराज जी रास्ते में चले जा रहे थे। उन्हों एक लड़के को गन्दगी में पड़ा देखा। उसका शरीर मल—मूत्र से लिबड़ा हुआ था। लगता था कि वह गहरी नींद में सो रहा हो। श्री मुल्खराज जी ने कहा—श्री प्रभु जी आ रहे हैं। वह कहने लगा हाँ ! प्रभु जी आ रहे है वहीं मुझे डाल गये थे। वह मेरे लिये आ रहे हैं इतने में श्री प्रभु जी आये। आते देखकर उसने खड़े होकर दण्डवत प्रणाम किया। श्री प्रभु जी ने उसे कण्ठ से लगा लिया व खूब प्यार किया। प्रभु जी ने उसके मल—मूत्र से लिबड़े शरीर की परवाह नहीं की। उसे प्रभु जी ने आज्ञा दी। बेटा इस पहाड़ी पर चले जाओ व भोजन में मग्न रहो'। वह भी सम्प्रज्ञात के आनन्दानुत समाधि का योगी था।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।

जिस स्थिति को पाकर उससे बड़ा और कोई लाभ नहीं मानता तथा जिसमें आरूढ़ हुआ योगी बड़े से बड़े दुःख से भी विचलित नहीं होता वही आनन्दानुसमाधि वाले योगी की स्थिति हुआ करती है।

श्री मुल्खराज जी आगे बढ़े। उन्हें एक फकीर पड़ा मिला। वह फकीर से बोले ! श्री प्रभु जी आ रहे हैं। वह कहने लगा। आ रहे हैं तो आ रहे है मैं क्या करूँ ? किन्तु जब श्री प्रभु जी आये तो उनकी तेज को देखकर तुरन्त खड़ा हो गया और कहने लगा—परवरदिगार हुक्म, परवरदिगार हुक्म। श्री प्रभु जी ने किसी विशेष पहाड़ की ओर संकेत कर उसे भी भेज दिया। इस अवस्था में योगी किसी प्रकार के

दुःख का अनुभव नहीं करता आत्म स्थिति में होने पर वह अपने ही मस्ती में रहता है।

इससे आगे अस्मितानुगत समाधि में योगी प्रवेश पाता है इसमें सब ज्ञान समाप्त हो जाता है केवल आस्मि–आस्मि यह वृत्ति ही शेष रहती है। इस अवस्था में पहुँचने पर योगी को दो प्रकार की ताकतें प्राप्त हो जाती है एक निर्माण चित की योग्यता। **'निर्माण चित्तान्यस्मिता मात्रात्'** योगी अपने हजारों चित्त बना सकता है।

अलग–अलग व्यक्तियों के पास जा सकता है। दूसरी ताकत है ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय। ऋतम्भरा प्रज्ञा का अर्थ है **ऋतं सत्यं विभर्ति या सा ऋतम्भरा।** सत्य को ही कारण करने वाली बुद्धि को ऋतम्भरा प्रज्ञा कहते है। योगी को जैसा–जैसा मन में आता है वैसा–वैसा ही घट रहा होता है। हमारा एक साधु था। हम किसी जंगल में हरिद्वार से दूर बैठे थे। उसके मन में भी जो बात आती थी वैसी सत्य होती थी। मैंने पूछा इस समय तुम्हारे मन में क्या बात आ रही है ? वह कहने लगा इस समय हरिद्वार में वर्षा हो रही है। दूसरी बात उन्होंने कही कि गंगा के ऊपर कोई आदमी बहता हुआ आ रहा है पता लगाने पर दोनों बातें सत्य निकली। हमारे पूर्वजों ने जो–जो सिद्धांत निकाले है वह त्रिकाल में सत्य है। उनके यह सिद्धांत ऋतम्भरा प्रज्ञा के सिद्धांत हैं। उनकी वाणी कभी मिथ्या नहीं होती, क्योंकि वे ऋतम्भरा प्राप्त योगी थे। वे सम्प्रज्ञात की पराकाष्ठा को प्राप्त थे। किसी विदेशी योगी ने भविष्यवाणी की कि फलां दिन प्रलय होगा ९०% आदमी मर जायेंगे। परन्तु प्रलय नहीं आया। वैसे तो व्यक्ति रोज मरते ही है पचास–सौ, हमारे ऋषियों ने भविष्य पुराण में जो–जो बातें लिखी हैं वे आज सत्य हो रही है। उसमें लिखा है कलियुग में पृथ्वी निर्बीज हो जायेगी, कागज की मुद्रा होगी। पत्नियाँ पतियों के विरूद्ध चलेंगी ये सब बातें अब घटित हो रही हैं।

अस्तु भगवान पतञ्जलि ने साधक को अपने मन को प्रसन्न एवं संतुलित रखने के लिए कुछ उपाय बतलाये हैं वे उपाय है–

''मैत्रीकरूणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःख पुण्यापुण्यानां भावनातः चित्त प्रसादनम्''

अर्थात् साधक को सुखी व्यक्तियों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए उनसे मित्रता का व्यवहार रखें। जो दुःखी व्यक्ति हैं उनके प्रति मन में करूणा भाव रखें। पुण्यशील साधु–ब्राह्मण व अन्य कोई पुण्यात्मा हो उस को देख प्रसन्नता का अनुभव करें मुदित हो जाये। पापी व दुराचारी के प्रति उदासीनता रखें इसके प्रति कोई भावना नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार इन भावनाओं को अपने मन पर लाने पर उसे मैत्री आदि बल प्राप्त हो जाते हैं। सारे संसार के व्यक्ति उसके मित्र बन जाया करते हैं। ये भावनायें योगी के सुखः का साधन बन जाया करती हैं। योगी साधक को अपने आहार–विहार का नियम ठीक–ठीक रखना चाहिये। उसका हर कार्य नियमित एवं समय पर होना चाहिए।

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

जो उचित मात्रा में एवं ठीक–ठीक समय पर आहार विहार रखता है कर्मों में चेष्टायें युक्त हैं। ठीक समय पर सो जाता है तथा ठीक समय पर

जाग जाता है इस प्रकार का नियमित किया गया योग दुःख का नाश करने वाला बन जाता है योग उसके लिये सुखदाई बन जाया करता है। इसके साथ एक और मुख्य बात है ब्रह्मचर्य पालन। साधना में ब्रह्मचर्य पालन बहुत ही आवश्यक है जो साधक को अन्तर्मुखता प्रदान करता है। हमारे इडा पिंगला इन दो नाड़ी से स्वर चलते हैं कुआँ आदि खोदना, विद्याध्ययन आदि कार्यों के समय इडा (बाँया स्वर) चलना चाहिए। युद्ध आदि तैजस कार्यों के समय पिंगला स्वर चलाया जाता है। दोनों नाड़ियों से बराबर श्वांस की गति–स्वर चलने पर सुषुम्न नाड़ी चलती है। योगध्यान के लिए सुषुम्ना ही चलनी चाहिए। इस नाड़ी में स्वर चलने पर अवश्य ही मन की एकाग्रता बनती है। सुषुम्ना के अन्तर्गत ही दो और नाड़ियाँ चलती हैं जिन्हें **व्रजा** और **चित्रिणी** कहते हैं। यह सुषुम्ना के दाँऐ–बाँये होती हैं। सुषुम्ना के बाँई ओर व्रजा तथा दाँई ओर चित्रिणी नाड़ी होती है। यदि कुण्डलिनी जगकर व्रजा में गतिमान रहे तो वज्रवत समाधि रहती है अनुभव नहीं होते हैं यदि चित्रिणी नाड़ी की तरफ गति हो जाये तो साधक को दृश्य दिखाई देते रहते हैं। किन्तु यदि कुण्डलिनी की गति सुषुम्ना जिसे ब्रह्मनाड़ी भी कहते हैं, की ओर रहे तो साधक शुद्ध समाधि की ओर चलता है। उसके लिए विवेक ख्याति का द्वार खुलने लगता है। इसलिए साधक को सुषुम्ना चलने पर अपनी साधना करनी चाहिए।

साधक को रात्रि के समय भी अपनी सुषुम्ना चलाये रखने के लिए ध्यान करते–करते शवासन में सीधे लेट जाना चाहिए। इससे सुषुम्ना चलती रहती है यह योगी की योग निद्रा बन जाती है। शवासन का उपदेश श्री प्रभु जी प्रायः उन स्त्रियों को किया करते थे जो आसन लगाकर अधिक देर नहीं बैठ सकती। इस प्रकार से सोने पर साधक का सोना भी सार्थक रहता है जो इस ढंग से सोता है उसके लिये

'सोना तो सबसे भला जो कोई जाने सोय
अन्तर्लौ लागी रहे सहज ही सुमिरन होय।'

की बात लागू होती है। मेरे इन शब्दों को सुनकर वे जो अपनी साधना में लगेंगे उन पर श्री प्रभु जी की अवश्य कृपा होगी व योग मार्ग में आगे बढ़ेंगे। इससे आगे की व्याख्यानों में हम समाधि के भेद को और अधिक स्पष्ट करके समझायेंगे। सभी को हमारा बार–बार आशीर्वाद।

***

जब मन एक ही विचार में स्थिर हो जाय और कम से कम पाँच मिनट तक कोई अन्य विचार ही न आवे तब 'ध्यान' लग जाता है तथा अपने शरीर अथवा संसार का स्मरण नहीं रहता। ऐसी स्थिति आत्म-ज्ञान के मार्ग का दूसरा सोपान है।

हेयं दुखमनागतम्

दुःखों की निवृत्ति ही सभी दर्शनों का लक्ष्य है। दुःख अज्ञानजन्य होते हैं और यह जीव का शाश्वत धर्म नहीं है। सुख दुःख प्रकृति के दो पहलू हैं। सच्चिदानन्द परमात्मा का सनातन अंश होने से जीव भी अखण्ड आनन्द को पाने का अधिकारी है। और पुरुषार्थ से वह ऐसा कर सकता है। योग दर्शन में महर्षि पतञ्जलि जी ने एक सूत्र दिया है– **'हेयं दुखमनागतम्'** अर्थात् अनागत जो दुःख है वह हेय है, त्याज्य है परिहार्य है। अब तक तो दुःखों को जितना भोगना था वह तो भोग लिया गया है। वर्तमान में प्रारब्ध प्रबल को भोग ही रहे हैं। किन्तु अगले क्षण में आने वाला दुःख है उस दुःख से बचा जा सकता है इस शरीर के प्राप्ति से पूर्व ही निर्णीत जाति (मनुष्यादि) आयु तथा भोगरूप प्रारब्ध के आधार पर हमारा वर्तमान जीवन चल रहा है। और **'प्रारब्ध कर्मणाम भोगादेव क्षयः'** के नियमानुसार प्रारब्ध कर्मों का क्षय भुगतान होने पर ही हुआ करता है यह एक साधारण नियम है। किन्तु योगियों के लिये यह नियम भी शिथिल पड़ जाता है। अथवा इसका बाध ही हो जाता है। जहाँ प्रारब्ध का भुगतान होता है वहीं पर एक दूसरा संस्कार जन्म ले लेता है जो भविष्य में कर्म के रूप में परिवर्तित होकर पुनः वासना के रूप में चित्त में बीज रूप से पड़ा रहता है इस प्रकार से कर्म एवं संस्कार का क्रम बना रहता है। किसी के कर्म के होने में पाँच हेतु मिलकर कर्म निष्पत्ति में सहायक हुआ करते हैं ऐसा भगवान ने गीता में संकेत किया है वे हेतु हैं– (१) अधिष्ठान (शरीर) (२) कर्ता (कर्तृत्वाभिमानी जीव) (३) कारण–समस्त इन्द्रियाँ (४) नानाविध चेष्टा (५) दैव–ईश्वरेच्छा।

ये पाँच कारण हमारे शुभाशुभ कार्य में हेतु बनते हैं। इसमें दैव भी एक मुख्य कारण है। यदि मानव यह जान ले कि ईश्वर ही उसके हृदय में बैठा हुआ उसे कर्म में प्रवृत्त कर रहा है तो वह कर्म में कर्तृत्व के अभिमान को छोड़ देगा। जीवन में भी मनुष्य देखा करता है कि वे अपनी इच्छा से नाना प्रकार के कर्म करता है किन्तु उसे असफलता ही हाथ लगा करती है किन्तु जब ईश्वरीय इच्छा की भावना से भावित होकर कोई कर्म किया जाता है तो उसमें स्वतः ही सफलता मिला करती है। दैव नाम प्रारब्ध अथवा पूर्व संस्कार भी है। प्रबल पूर्व संस्कार से वशात प्रेरित होकर मनुष्य इस जन्म में भी उसी संस्कार के अनुरूप कार्य करता है।

मनुष्य वर्तमान में जैसा पुरुषार्थ कर रहा है। उसी के अनुरूप उसे आगे भी उसके अनुसार फल मिलेगा किन्तु कर्म करते हुये यदि सुकृतात्मा कार्य में ईश्वरीय विधान को महत्व दे तो वह कर्म एवं संस्कार के अछेद्य जाल को काट सकता है। इसी ईश्वरीय विधान को समझने का नाम **बुद्धि योग** है। बुद्धि योग की प्राप्ति हो जाने पर मनुष्य पाप–पुण्य दोनों प्रकार के कर्मों को लांघकर आगे निकल जाता है। धीरे–धीरे गुणातीत अवस्था की ओर चला जाता है।

साधक जब ध्यानाभ्यास में बैठता है तो उसे ज्ञात होता है कि उसका मन बहुत चंचल है। जिस लक्ष्य पर मन को लगाना चाहते है वह उसमें लग नहीं पाता है। मन या तो भूतकाल में चला जाता है अथवा मस्तिष्क की योजना में जुट जाता है इसलिये उसका मन एकाग्र नहीं हो पाता फलतः उसे शान्ति नहीं मिलती। समाधि में योगी वर्तमान में ही जीता है। सत्य सदा ही वर्तमान रहता है। सत्य स्वरूप परमात्मा में स्थिति रहने के कारण योगी वर्तमान में जीना सीख जाता है। इसी के फलस्वरूप वह गुणातीत हो जाता है। योगियों का सिद्धान्त है कि **पुरुषार्थ से प्रारब्ध को भी बदला जा सकता है।** योग ध्यान की विशेषता यही है कि भुगतान में आने वाले पूर्व क्लिष्ट कर्मों को हल्का कर भुगतान करा देता है अथवा यदि लयता की स्थिति साधक की हो तो क्लिष्ट कर्म बिना फल दिये ही प्रभावहीन होकर क्षीण हो जाया करता है। **'अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतकर्म शुभाशुभम्'** का नियम सामान्य मनुष्य के लिये है योगियों के लिये नहीं। योगस्थिति प्राप्त साधकों के विषय में तो भगवान ने गीता में स्पष्ट कहा है– **ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः** अर्थात् योगज्ञान की अग्नि में योगी के शुभाशुभ सम्पूर्ण कर्म भस्म हो जाया करते हैं। योग शास्त्र का सिद्धान्त है कि योगी तीव्र ध्यान साधना, सिद्ध सेवा एवं गुरुकृपा से प्रारब्ध को बदल डालता है। भाष्यकार व्यासदेव जी महाराज लिखते हैं– तीव्र संवेग के साथ किया गया योगानुरूप तप, मन्त्र जप एवं समाधि का दृढ़तर अभ्यास, ईश्वर, महर्षि एवं सिद्ध गुरु की सेवा में प्रारब्ध को बदल कर शीघ्र ही अपने पुरुषार्थ के फल को योगी पा जाता है। जिस प्रकार अबोध बालक माता के अभयप्रद गोद में निश्चिन्त रहता है। इसी प्रकार योगी समाधि की स्थिति में प्रकृति एवं तज्जन्य क्लिष्ट कर्मों से अछूता रह लेता है। क्लिष्ट से क्लिष्ट संस्कार भी या तो थोड़े में ही भुगतान में आ जाया करते हैं अथवा बिल्कुल प्रभावहीन से रह जाते हैं ऋतम्भरा प्रज्ञा के पश्चात उदित रहने वाला कैवल्योन्मुखी एक ही वृत्ति शेष रहती है वह वृत्ति पुनः किसी अन्य संसारी वृत्ति को उठने नहीं देती है। इस वृत्ति के प्रभाव से योगी के मन में संसार में बाँधने वाला कोई नया संस्कार उत्पन्न नहीं होता। **'तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कार प्रतिबन्धिः'** ऋतम्भरा का संस्कार अन्य अच्छे बुरे समस्त संस्कारों को रोक देता है। अस्तित्व हीन कर देता है। ऐसे योगी के क्लेश के बीज जल जाया करते हैं। तभी वह निर्विकार स्थिति में रहा करता है।

वस्तुतः देखा जाये तो मनुष्य का सारा पुरुषार्थ आने वाले दुःख के परिहार के लिये ही है। गीता में भगवान ने स्पष्ट शब्दों में कहा है–

'तं विद्यात् दुःख संयोग वियोगं योग संज्ञितम्'

अर्थात्–दुःख के संयोग का जो वियोग करा दे अर्थात् दुःख को सदा के लिये हटा दे उसका नाम योग है और उस योग को अवश्य जान लेना चाहिये। जन्म–मृत्यु–जरा–व्याधि रूप दुःख दोषों के निवारण का एक मात्र उपाय ध्यान योग है। इसी से मनुष्य के भावी दुःख का हरण संभव है।

***

व्याधि के रहते समाधि कहाँ ?

प्रोफेसर आचार्य **चन्द्रहास शर्मा**, दिल्ली

मानव जीवन का लक्ष्य सुख, शान्ति और आनन्द की उपलब्धि है। जब तक शरीर जरा, व्याधि, मरण दुःख के भय तथा इच्छाओं की पूर्ति न होने के अफसोस से आक्रान्त है, तब तक सुख के साधन होते हुए भी सुख का अनुभव कहाँ कर पाता है ? शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जब तक स्वस्थ नहीं है तब तक संसार का सारा सुख–दावानल की भाँति तपनदायी हुआ करता है। जब तक शरीर सबल नहीं तब तब ब्रह्मानन्द की उपलब्धि कल्पना की बात है। मुण्डकोपनिषद में कहा गया है कि 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः आत्मतत्व का साक्षात्कार बलहीन व्यक्ति के बस की बात नहीं है। आत्म चेतना का अनुभव इस क्षणभंगुर शरीर के द्वारा किये गये चिर स्थायी फल के देने वाले कर्मों के द्वारा सम्भव है। यथा यज्ञ, ज्ञान, तपस, वेदाध्ययन, शम–दम का अभ्यास, सदाचार, योगाभ्यास आदि उपायों से सर्वोत्कृष्ट सुख मिला करता है। जब किसी सद्गुरु की कृपा से ऐसा संयोग बन जाय कि कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान हो सके, जिसके द्वारा भ्रू मध्य के अन्दर विद्युत, सूर्य, चन्द्र की भाँति शाश्वत, भासित होने वाली चिन्मय परं ज्योति का अनुभव होने लगता है तो शरीर और मन के सभी रोग भी स्वतः दूर हो जाते है तथा आनन्द का हर समय अनुभव होने लगता है। हमारा शास्त्रीय प्रमाण है—

भ्रूमध्यगत यच्छिखिविद्युत्सूर्येन्दुवज्जगद् भाति।
केषांचित् पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं परं ज्योति।।
परमानन्दैकरसं परमं ज्योति : स्वभावमविकल्पम्।
विजलित सकल क्लेशं ज्ञेयं शान्तं स्वसंवेद्यम्।।
तन्निधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन्।
उत्सन्न कर्मबन्धो ब्रह्मत्वमिहै व प्राप्नोति।।
रागद्वेषविमुक्ताः सत्याचार मृषारहिताः।
सर्वत्र निर्विशेषा भवन्ति चिद्ब्रह्म संस्पर्शात्।।
तिष्ठन्ति अणिमादियुता विलसद्देहाः सदोदितानन्दाः।
ब्रह्म स्वभावममृतं संप्राप्ताश्चैव कृत कृत्याः।।

अर्थात् उस परम ज्योति का साक्षात्कार करने के बाद समस्त रोग क्लेश, रागद्वेष दूर हो जाया करते है। उस अवस्था में जगत भी आनन्द का आगार प्रतिभासित होने लगता है तथा देह आनन्दरस से भरपूर अणिमा, महिमा, गरिमादि अष्टविध सिद्धियों की क्रीड़ा भूमि बन जाया करती है। उस अमरता देने वाले ब्रह्म स्वभाव में स्थित होने पर ही मनुष्य के जीवन की कृताकृत्यता है।

समाधि सिद्धि के अनन्तर मनुष्य पूर्णरूप से नीरोग हो जाता है। किन्तु समाधि सिद्ध करने के लिए

वृद्धावस्था का खांसी, श्वास, आदि अनेकों रोगों से जर्जरित शरीर काम का नहीं रह पाता। क्योंकि शरीर की क्षीणता से इन्द्रियों की शक्ति भी प्रतिबन्धित हो जाती है। आचार्य वाग्भट्ट कहते हैं–

यज्जरया जर्जरितं कासश्वासादि दुःख विवशं च।

योग्यं तन्न समाधौ प्रतिहत बुद्धीन्द्रिय प्रसरम्।।

बालक अवस्था नादानी में बीत जाती है, यौवनावस्था विषयरस के आस्वादन और लम्पटता में बीत जाती है। वृद्धावस्था में दण्ड का सहारा लेकर चल पाता है। यद्यपि कुछ–कुछ विवेक आ जाता है किन्तु शरीर और इन्द्रियों की शक्ति ही नहीं तो मुक्ति का साधन किससे होगा ? जब इस शरीर से ही कोई साधन सम्भव नहीं हो पाया तो मर कर तो मुक्ति की कामना कल्पना मात्र होगी। यदि इस जीवन में जीते जी मुक्ति का आनन्द लेना है तो सर्वप्रथम अपने शरीर और मन को स्वस्थ और सबल बनाने की आवश्यकता है।

शरीर में रोगों के आक्रमण से बल का ह्रास होता है। युवावस्था के पहले ही कुछ लोगों में वृद्धावस्था के लक्षण दिखायी पड़ने लगते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में वृद्धावस्था के पाँच कारण माने हैं–

यथा : शीतं कदन्नानि वयोवृद्धाश्च योषितः।

मनसः प्रतिकूल्यं च जरायाः पञ्च हेतवः।।

अर्थात्–अधिक पैदल चलने, शीत स्थान में रहने, दूषित अन्न के खाने तथा अपनी आयु से अधिक स्त्री के साथ संभोग रत रहने तथा मन के प्रतिकूल कार्यों को करने या स्थानों पर रहने के लिए विवश होने से वृद्धावस्था शीघ्र आती है। वृद्धावस्था से पूर्व भी मिथ्याहार विहार तथा प्रज्ञापराध से वात पित्त कफ इन त्रिदोषों तथा रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा, वीर्यादि सप्त धातुओं में असात्म्य (गड़बड़ी) होने से रोगों की उत्पत्ति हो जाती है। रोग पाप से उत्पन्न या कर्म से उत्पन्न कारणों से पैदा होते हैं। पूर्व जन्म कृत कर्मों से ऐसे रोग उत्पन्न होते हैं, जिनकी चिकित्सा औषधियों द्वारा सम्भव नहीं है। पापज रोगों की चिकित्सा रस रसायनों द्वारा सम्भव है। इसी अनुसार उन्हें साध्य–कृच्छ्रसाध्य और असाध्य श्रेणी में विभक्त किया गया है असाध्य रोगों में कुछ 'याप्य' अर्थात् औषधि आदि द्वारा ठीक हो सकें और कुछ औषधि से ठीक नहीं होते। ऐसे रोगों की चिकित्सा आसन, प्राणायाम, बन्ध मुद्रा, पंचतत्वों की धारणा, ध्यान और समाधि से ही सम्भव हो सकती है। अन्यथा असाध्य रोगी यमराज का अतिथि ही बनता है। उपेक्षा से साध्य रोग भी याप्य और असाध्य हो जाते हैं।

जिसका जन्म हुआ है, उसके जन्म के साथ–साथ मृत्यु भी उसका पीछा करती है। मनुष्य की एक सौ एक प्रकार से मृत्यु सम्भव है। सौ आगन्तुक या अकाल मृत्यु है, और एक अवश्यम्भावी कालमृत्यु है। सौ आगन्तुक मृत्यु के शास्त्रकारों ने छः कारण माने हैं–

अत्यम्बुपाना द्विषमाशनाच्च, दिवाशयाज्जागरणाच्च रात्रौ।

संरोधनान्मूत्रपुरीषयोश्च, षड्भिः प्रकारैः प्रभवन्ति रोगाः।।

अर्थात्—अत्यधिक जल आदि पेय पान से, ऋतु, आयु और प्रकृति के विरुद्ध, संयोगजन्य आहार करने से, दिन में सोने और रात्रि में जागरण करने से, मल—मूत्र वीर्य, छींक, जंभाई, खांसी आदि वेगों के रोकने से, रोग पैदा हो जाते हैं। कुछ व्याधियां ऋतु के सन्धिकाल में होती हैं। नीतिकारों ने इन्द्रियों के अधिक विषयासक्त होने को व्याधियों का कारण माना है। उसमें रसनेन्द्रिय का संयम न होने से प्रजननेन्द्रिय का भी असंयम होने लगता है। जिससे रोगोत्पत्ति होती है—

'लोभ मूलानि पापानि, रसमूलानि व्याधय:।
इष्टमूलानि शोकानि, त्रीणित्यक्त्वा सुखी भव।'

अर्थात् लोभ के कारण पाप होते हैं, रसना की लोलुपता से व्याधियां होती हैं और शोक अपने प्रियजनों के वियोग से होता है। अत: यदि सुख चाहिए तो इन तीनों को छोड़ दे। शारंगर पद्धति में व्याधियों का उदय दुर्भाग्य तथा पाप से ही माना गया है। पुण्यों के अभाव से ही रोग, धननाश, प्रिय का विरह, असुन्दरता उद्वेग, सर्वत्र आशाभंग होना आदि हुआ करते हैं—

'व्याधि वित्त विनाश: प्रिय विरहो दुर्भगत्वमुद्वेग:।
सर्वत्र आशाभंग स्फुटं भवति ह्यकृतपुण्यस्य।।'

'सर्वे दोषा मंदाग्नौ'—अर्थात् रोगों का आरम्भ मंदाग्नि से होता है। अनन्तर वात पित्त और कफ के प्रकोप से रोगों का सिलसिला बढ़ने लगता है। मानसिक आधि (दु:ख) पहले होता है उसके बाद शारीरिक व्याधियाँ हुआ करती हैं। जितनी भी आगन्तुक व्याधि हैं, उनकी चिकित्सा औषधि, जप, होम, दान, मंत्र महापुरुषों की सेवा आदि उपायों से सम्भव है। एक जो कालमृत्यु है उसकी चिकित्सा किसी उपाय से सम्भव नहीं है। जैसे तेल और बत्ती के क्षीण हो जाने पर दीपक बुझ जाता है, ऐसे ही शरीर के रोग और वृद्धावस्था से जर्जर हो जाने पर प्राण उस शरीर को छोड़कर चले जाते हैं। व्याधि की निवृत्ति से देह और मन का सुख सम्भव है। यदि दु:ख के कारण भूत अज्ञान और अविद्या को क्षय किया जा सके तो उसे ही मोक्ष कहा जाता है। बिना मोक्ष के सुख स्थायी नहीं रह पाता। मोक्ष का द्वार योग साधना के बिना अन्य किसी उपाय से नहीं खुलता। मूर्खता का जब तक इलाज न किया जाय तब तक सारे अन्य उपाय काम नहीं करते। मूर्खता, मन, प्राण और चित्त के निरन्तर चंचल बने रहने के कारण बढ़ती है। नीरोगी रहने के लिए सर्व प्रथम अपना आहार—विहार और आचार—विचार संतुलित रखना चाहिये। आचार्य चरक ने नीरोग रहने के लिए निम्नलिखित उपाय बताये हैं—

नित्यं हिताहार विहार सेवी, समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त:।
दाता सम: सत्यपर: क्षमावान् आप्तोपसेवी स भवत्यरोग:।।
मतिर्वच: कर्म सुखा नुन्धं, सत्वं विधेयं विशदा च बुद्धि:।
ज्ञानं तप: तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगा:।।

अर्थात् जो नित्य हितकारक, ऋतु और काल के अनुकूल, मिताहार सात्विक भोजन करता है। जिसका

व्यवहार किसी को उद्विग्न नहीं बनाता। सोच–विचार कर वाणी बोलता है, तथा अन्य सभी क्रियायें करता है जो दानशील है, हर्ष–विषाद, हानि–लाभ, सुख–दुःख में सम रहता है। क्षमाशील स्वभाव का है तथा आयुवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, तपोवृद्ध एवं साधुसन्तों की हर प्रकार से सेवा और उनका संग करता है। वह हमेशा नीरोग रहता है। जिसके कर्म वचन और मन सुखकारक होते हैं, सत्य का व्यवहार करता है, बुद्धि तुच्छ नहीं रखता, विशाल हृदय वाला है, ज्ञान पिपासु, तपस्वी तथा योगपरायण रहता है, उसे कभी रोग नहीं होता।

योग साधक की ऋतुचर्या और दिनचर्या हिताहित को जानकर होनी चाहिये। स्वस्थ रहने के कुछ सामान्य नियम इस प्रकार हैं–

'भोजनान्ते पिबेत्तक्रं वासरान्ते पिबेत्पयः।
निशान्ते पिबेदवारि त्रिभिः रोगो न जायते।।
वामशायी द्विपुंजानः षण्मूत्री द्विपुरीषकः।
स्वल्पमैथुनकारी च शतं वर्षाणि जीवति।।'

अर्थात् भोजन के अन्त में छाछ का सेवन करना, रात के प्रारम्भ में दुग्धपान करना, रात्रि व्यतीत होने पर प्रतिदिन आठ अंजुलि परिणाम जल पीने से वात–पित्त कफ के उपद्रव शान्त होते हैं। यदि नासिका से प्रातः जलपान किया जाय तो झुर्रियाँ बालों का गिरना, सफेद होना आदि रुक जाता है। भोजन के पश्चात् बायें करवट लेटना चाहिये। दिनभर बकरी की तरह चरते रहने से आमवात का रोगी बन जाता है। दो बार ही भोजन उचित है। मूत्र विसर्जन अनिवार्य रूप से छः बार करने से पथरी, सुजाक, दाह आदि कभी नहीं होते। प्रातः सायं सोकर उठने पर, सुबह–शाम भोजनोपरान्त, सम्भोग के बाद तथा स्नान के पूर्व–पेशाब जाना चाहिये। दो बार शौच जाना चाहिये। जितने बार खाना, उतने बार पाखाना। यह नियम है। मैथुन कर्म भी अपनी स्त्री से ऋतुकाल में स्वल्पकाल करने वाला सौ वर्ष तक जीवित रहता है। अपने जीवन को सुख शान्तिमय तथा शरीर को नीरोग रखने की इच्छा करने वाले जन को निम्नलिखित कर्म वर्जनीय काल में नहीं करना चाहिये।

'चत्वारि घोररूपाणि सन्ध्याकाले परित्यजेत्।
आहार मैथुन निद्रां स्वाध्यायं च विवर्जयेत्।।
आहाराज्जायते व्याधिः मूढ़गर्भश्च मैथुनात्।
अलक्ष्मी शयनाच्च स्वाध्यायादायुषः क्षयः।।

अर्थात् संध्याकाल में आहार करने से नाना प्रकार की व्याधियाँ होती हैं। मैथुन करने से मूढ़गर्भ (गर्भ की विकृति) होती है, शयन करने से लक्ष्मी का नाश तथा स्वाध्याय करने से आयु का क्षय होता है। अतः संध्याकाल में आहार, मैथुन, निद्रा और स्वाध्याय नहीं करना चाहिये। छः चीजों के सेवन से तुरन्त प्राण शक्ति का विकास होता है। ताजी बनाया गया घी, अंगूर, दुग्ध का आहार, उष्ण जल, पेड़ों की छाया तथा तरुण स्त्री। बासी दही, प्रातःकालीन सूर्य, प्रातःकाल का मैथुन कर्म तथा निद्रा, वृद्धास्त्री सेवन ये छः कर्म

तुरन्त प्राणशक्ति का ह्रास करने वाले हैं। अतः नित्य हितकारक आहार विहार करना चाहिये।

शरीर का निर्माण मन की वासना से उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार रेशम का कीड़ा अपने रहने के लिए स्वयं ही अपना कोश तैयार कर लेता है। यह देह पूर्वजन्म की अभ्यास द्वारा दृढ़ हुई वासनाओं की आकार भूति है। मन जब योगाभ्यास से देहभाव से स्वतन्त्र हो जाता है तो मन को रोग, शोक, सुख दुःख इन देह धर्मों का भान नहीं होता। जब देहभाव से ऊँचे आत्मभाव में हम उठ जाते हैं तब हमें शरीर के सुख–दुःखों का अनुभव नहीं होता। शारीरिक और मानसिक रोग जीवन की अशुद्धि के कारण होते हैं। उनको दूर करने का सरल उपाय धारणा और ध्यान द्वारा विचारों को तथा यम–नियम–आसन–प्राणायाम और प्रत्याहार द्वारा जीवन के व्यवहार तथा प्राणवाहिनी नाड़ियों को शुद्ध करना है। जब मन शुद्ध और पवित्र होता है तो मन में निरन्तर आत्मतेज की बलवती धारायें प्रवाहित होती रहती हैं, जिससे शरीर नीरोग और सुन्दर रहता है। हमारा शास्त्रीय सिद्धान्त है–

चित्तायत्तं धातुबद्धं शरीरम्, नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयम्, स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति।।
चित्तायत्तं नृणां शुक्रं, शुक्रायत्तं च जीवितम्।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव, रक्षणीयं प्रयत्नतः।।

अर्थात् धातुनिर्मित शरीर चित्त के आधीन है। चित्त का नाश होने पर शरीर का नाश होता है। इसलिए चित्त को स्वस्थ रखने का सदा प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य का शुक्र चित्त के अधीन और जीवन शुक्र के अधीन है। इसलिए मन और शुक्र की शरीर से पहले रक्षा करनी चाहिये।

मन और चित्त का रक्षण शक्ति से नहीं, युक्ति से किया जाता है। आदि–व्याधि का प्रादुर्भाव मूर्खता और अज्ञान से होता है। अज्ञान के कारण मनुष्य का मन उसके वश में नहीं रहता। तीव्र वासनाओं के वशीभूत होकर अखाद्य, मांस, अण्डा, शराब, गांजा, भांग आदि खाने–पीने लगता है। अगम्य स्थानों पर जाने लगता है। अनुचित समय पर अनुचित आचरण करने लगता है। उसका भाव और चिन्तन निराशा और अमंगलजनक हो जाता है। उसे दुष्ट पुरुषों की संगति से सुख मिलता है। ऐसी अवस्था में प्राण वाहिनी नाड़ियों का प्रसारण और संकोच कम होने लगता है। जिससे नाड़ियों की शक्ति क्षीण हो जाती है और प्राण अपान की गति क्षीण होती जाती है। यही रोग उत्पत्ति का कारण बन जाया करता है। प्राणों की गति में विषमता आ जाने से अन्न रस का पाचन और परिपाक ठीक नहीं होता। यदि आधि नष्ट कर दी जाय तो व्याधियाँ स्वतः नष्ट हो जाती हैं।

चित्त शुद्धि सर्व प्रथम है। चित्त शुद्धि के लिये निम्नलिखित युक्तियाँ हैं–

अध्यात्म विद्याधिगमः, साधुसंगतिरेव च।
वासना संपरित्यागः, प्राणस्पन्द निरोधनम्।।
एतास्तु युक्तयः पुष्टाः सन्ति चित्तजये किल।। (मुक्तिकोपनिषद्)

अर्थात् अध्यात्म विद्या (योग) का अभ्यास, सद्जन संगति, वासना परित्याग, प्राणायाम, शुद्ध और शुभकर्मों का अनुष्ठान, शिवसंकल्प आदि युक्तियों से चित्त और मन की विशुद्धि होती है। संसार में जन्म लेना ही मूलरोग है। रोगों की पूर्ण निवृत्ति निर्विकल्पक समाधि की अवस्था प्राप्त कर जन्म—मरण के चक्र से बिल्कुल छूट जाने से ही सम्भव है। आत्मज्ञान जब तक नहीं होता, औषधि, मंत्र जप आदि उपायों से कुछ समय के लिए रोग दूर किये जा सकते हैं।

मन के निश्चय का ही सारा खेल है। मन जिस बात का दृढ़ निश्चय कर लेता है, शरीर पर वैसा ही परिणाम घटित होने लगता है। जैसे मणि पर पड़ा हुआ प्रतिबम्ब मणि को स्नान कराने से नहीं मिट सकता। उसी प्रकार मन का दृढ़ निश्चयभाव, द्रव्य, औषधि या प्रायश्चित्त आदि किसी साधन से दूर नहीं किया जा सकता इसलिए अपने पुरुषार्थ से मन को धारणा—ध्यान द्वारा एकाग्र कर आत्मचिन्तन करने वाले के पास रोग और दुःख फटक नहीं सकते। ऋषि वशिष्ठ ने काकभुशुण्डि जी से उनके नीरोगी शरीर और प्रसन्नचित्त का रहस्य पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया मैं सदा नीरोग इसलिए रहता हूँ कि मैं इष्ट और अनिष्ट, चपलता, चिन्ता, प्राप्ति—अप्राप्ति में शान्त और समाहित रहता हूँ। शत्रु—मित्र—बन्धु, अपना—पराये का भेदभाव मेरे मन में नहीं है। आहार बिहार तथा सभी कर्म देहाभिमान त्यागकर आत्मा की प्रसन्नता के लिए अकर्ताभाव से करता हूँ। जीर्ण, टूटी हुई, शिथिल अंगवाली, नष्टप्राय वस्तुओं में भी नवीनता का अनुभव करता हूँ। सुखियों को देखकर सुखी तथा दुःखितों को देखकर दुःखी होते हुए भी अचल और अनासक्त रहता हूँ। भाव और अभाव में सदा एक समान रहता हूँ। मन के भीतर की चिकित्सा करने पर सारा संसार अमृत से भरपूर इसी प्रकार दिखाई पड़ता है, जैसे जूता पहने हुए व्यक्ति को समस्त पृथ्वी चर्मावृत प्रतीत होती है।

आत्म विश्वास अर्थात् स्वयं अपने में विश्वास करना, एक कला है जो निरन्तर के अभ्यास से प्राप्त होती है। आत्म विश्वास से परिपूरित व्यक्तित्व स्वयं को दूसरों की दृष्टि में अधिक अच्छे ढंग से प्रस्तुत करता है। उठने-बैठने, चाल-ढाल, बोलचाल, मुस्कुराने, कार्य-कलाप, चिन्तन-मनन में प्रतिक्षण जागरूक रहने तथा स्वच्छता अपनाने से आत्म विश्वास की उपलब्धि होती है। यही सफल जीवन की कुंजी है।

किमस्ति योगः

(द्वाविंशतिः श्रृंखला)

रचनाकार : **द्वारका प्रसाद शर्मा**, लखनऊ।

भगवान पतञ्जलिदेव विरचित योगदर्शन शास्त्र के सूत्रों पर आधारित प्रस्तुत व्याख्या साधन–पाद २ के निम्नांकित सूत्रों को लेकर की जा रही है।

— **वितर्क बाधने प्रतिपक्षभावनम्।**

— **वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता**
लोभक्रोध मोह पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्त फला इति प्रतिपक्ष भावनम्।

— **अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।**

— **सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।**

— **अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्**

— **ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।**

— **अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्ता सम्बोधः।**

पूर्व की भाँति मंगलाचरण के द्वारा इस लेख का आरम्भ करेंगे।

(१) **पांसवो गुरुचरणानां, विराजन्तां सदैव मे।**
शिरोभागे च कुर्वन्ताम्, वाचं पूतं मनोऽमलम्॥

श्री सद्गुरूदेव की चरणधूलि सदा ही मेरे मस्तक पर विराजमान रहे और वह मेरी वाणी को पवित्र तथा मन को निर्मल बनाये रखे।

(२) **तेषां प्रसादतश्चाह, आरभेय तु पूर्ववत्।**
व्याख्यानं योगसूत्राणां, योगदर्शन शास्त्रतः॥

उन्हीं श्री गुरूदेव के अनुग्रह से मैं पूर्व की भाँति योग दर्शन शास्त्र से योग सूत्रों की व्याख्या को आरम्भ करूँ।

(३) **पूर्वागतानि सूत्राणि, व्याख्येयानि क्रमात्तथा।**
श्लोकैरनुबद्धानि, भाषायां भावितानि च॥

पूर्वोक्त सूत्र क्रमशः व्याख्या के लिये श्लोकों में निबद्ध तथा भाषानुवाद सहित लिये जा रहे हैं।

— सूत्र सदर्भ सहितम्—**वितर्क बाधने प्रतिपक्षभावनम्।**

(४) **यदाऽवरून्धते भावाः, यमनियम पालने।**
तदा वै चिन्तनीयाः स्युः, प्रतिपक्षीय भावनाः॥

जब वितर्क (यम और नियमों के विरोधी) हिंसादि भाव यम नियमों के पालन में बाधा पहुँचायें तब प्रतिपक्षी विचारों का (बारम्बार) चिन्तन करना चाहिये।

(५) **आयान्ति बहु विघ्नानि श्रेयः कर्माणि कुर्वतः।**
तेषां निरोधनं योगी, कुर्यात्तत्प्रति चिन्तनैः॥

साधक को शुभ कर्म करते समय अनेक विघ्न **'श्रेयांसि बहु विघ्नानि'** उपस्थित होते हैं। तब उन वितर्कों (विरोधी विचारों) का शमन प्रति पक्ष भावना करके करना चाहिये। प्रतिपक्ष का तात्पर्य यह है कि हिंसा का भाव होने पर दया भाव का चिन्तन करना आदि।

— **ननु वितर्काणां स्वरूपाः, तत्तत्भेद फलैः साकं प्रतिपक्षभावनाः, अग्रिमे सूत्रे विशदी क्रियते भगवत्पादेन महर्षिणा।**

वितर्कों के स्वरूप उनके भेद–फल के सहित प्रतिपक्षभावना भगवान् पतंजलि द्वारा अगले सूत्र में स्पष्ट की गई है।

— सूत्रं तदर्शं सहितम्—**वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभ क्रोध मोह पूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानान्त फला इति प्रतिपक्ष भावनम्।**

(६) **हिंसादयो वितर्का वै, यमनियम रोधकाः।**
कृता वा कारिताश्चापि, भवन्ति वा समर्थिताः॥

(७) **लोभः क्रोधोऽथ मोहश्च, हेतु स्तस्य निदर्शितः।**
मृदुमध्यस्तथा तीव्रः, इत्यैते भेद संज्ञकाः॥

(८) **त एव फलदातारः, दुःखाज्ञानयोरपि।**
अवस्तेषां निरासाय, प्रतिपक्षस्य भावनम्॥

यम नियमों के विरोधी हिंसा आदि वितर्क हैं। वे स्वयं किये हुये, औरों से कराये हुए और समर्थन किये हुए होते हैं। उनका कारण लोभ, क्रोध, मोह होता है। वे मृदु, मध्य और तीव्र भेद वाले होते हैं। वे दुःख और अज्ञान का अनन्त (अपरिमित) फल देने वाले हैं। यह प्रतिपक्ष की भावना करना है।

— सूत्रं तदर्शं सहितम्—**अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।**

(९) **अहिंसायां दृढायां तु, ये केऽपि प्राणधारिणः।**
योगिनः सन्निधौ सर्वे, स्वीयं वैरं त्यजन्ति ते॥

(१०) **ऋषेः कण्वाश्रमे भरतः सिंहस्य शावकैः सह।**
क्रीडति स्म पुरा सर्वः, को न जानाति साधकः॥

अहिंसा की दृढ़ स्थिति होने पर उस (योगी) के निकट सब प्राणी वैर भाव का त्याग कर देते हैं।

कण्व ऋषि के आश्रम में भरत जी सिंह शावकों से खेला करते थे। इसे कौन नहीं जानता। इसके अतिरिक्त अन्य भी उदाहरण हैं।

— सूत्रं तदर्थसहितम्—**सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।**

(११) **सत्यस्य दार्ढ्यमापन्ने, योगिनि तु निसर्गतः।**
क्रियाफलस्याश्रयत्वं, समाविशति सर्वतः॥

(१२) **योगिनो यस्य सत्यस्य, जायते सिद्धिरुत्तमा।**
वाचस्तस्य भवेत्पूताः, नानृताः, स्युः कदाचन॥

सत्य की दृढ़ स्थिति होने पर क्रिया—फल के आश्रय का भाव आ जाता है। जिस योगी को सत्य की सिद्धि हो जाती है उसकी वाणी से कभी असत्य बात नहीं निकलती।

(१३) **अमोघा च गिरातस्य, क्रिया या या तया भवेत्।**
फलमाश्रयते सा च, सत्यस्यैव समाश्रयात्॥

(१४) **या च कापि गिरा तस्य, शापानुग्रह संज्ञिता।**
भविता सकला सत्या, योगिनो मुख निर्गता॥

(१५) **यज्ञादि कर्मभिर्यद्यत्, प्राप्यते पुरुषैः फलम्।**
तत्सर्वं योगिनो वाचा, लभ्यते नात्र संशयः॥

(१६) **भूतभव्य भवत्काले, योगिनः सत्यवादिनः।**
निर्मलं जायते स्वान्तं, क्रियार्थं धारति गिरा॥

उनकी वाणी अमोघ हो जाती है एवं उसकी वाणी द्वारा जो क्रिया होती है, उसमें फल का आश्रय होता है।

उसकी वाणी से शाप, वरदान, आशीर्वाद जो निकलेंगे सत्य होंगे एवं यज्ञादि शुभ कर्मों से जो फल मिलता है वह फल उनकी वाणी से ही मिल जाया करता है।

भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालों में सत्यनिष्ठ योगी का अन्तःकरण इतना निर्मल हो जाता है कि उसकी वाणी से वही बात निकलती है जो क्रिया रूप में भवितव्य हुआ करती है।

— सूत्रं तदर्थ सहितम्—**अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।**

(१७) **अस्तेयस्य समाचारात्, समक्षं योगिनस्तु वै।**
सकलान्येव रत्नानि, उपतिष्ठन्ति योगिनः॥

चोरी के पूर्णतया त्याग से उस योगी के सामने सब प्रकार के रत्न प्रकट हो जाते हैं।

— सूत्र तदर्थसहितम्— ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

(१८) ब्रह्मचर्यस्य दार्ढ्ये तु, सामर्थ्यं लभते नरः।
कायेन मनसा वाचा, ओजस्वी भवति पुमान्॥

ब्रह्मचर्य की दृढ़ स्थिति होने पर कायिक, वाचिक और मानसिक रूप से योगी सामर्थ्य का लाभ प्राप्त किया करता है।

— सूत्रं तदर्थ सहितम्—अपरिग्रह स्थैर्ये जन्म कथान्त सम्बोधः।

(१९) अपरिग्रह स्थायित्वे, जन्मान्यं वेत्ति वै पुमान्।
अपरिग्रह की पूर्ण स्थिति होने पर जन्म जन्मान्तरों का ज्ञान प्रकट हो जाया करता है।

(२०) परिग्रहस्तथाऽविद्या, सन्ति क्लेशास्तु योगिने।
त्यागस्तेषां यथार्थेन, अपरिग्रह उच्यते॥

योगी के लिये परिग्रह, अविद्या (चित्त में ममत्व अहंकार) आदि महान् क्लेश हैं। यथार्थतः इनका त्याग ही अपरिग्रह है।

(२१) त्यागादनन्तरं योगी, भूत्वा वेत्ता पदार्थनाम्।
वेत्ति पूर्वा परं वृत्तं, जन्मनस्तु यथार्थतः।

(२२) कोऽहमासं जन्मतः प्राक्, किं किं कर्म कृतं मया।
कर्मणा केन योनिर्वै, एषा प्राप्ता मया इह॥

(२३) वैराग्यं जायते तस्य, संसारादति दुस्तरात्।
योगमार्गः प्रशस्तः स्याद्, ज्ञानेनानेन योगिनः॥

उनके त्याग कर देने पर उसका चित्त पदार्थ ज्ञान का ज्ञाता हो जाता है और उसको अपने पूर्व परजन्मों की सब बातों का यथार्थ ज्ञान हो जाता है।

मैं पहले जन्म में कौन था, मैंने क्या—क्या काम किये, किस प्रकार रहा। किस कर्म के अनुसार मुझे यह योनि प्राप्त हुई, ये सब बातें स्मरण हो आती हैं।

इस प्रकार से वैराग्य भाव की वृद्धि होती है और दुस्तर संसार के आवागमन चक्र से योग मार्ग प्रशस्त होता हुआ साधन रूप हो सहायक होता है।

(२४) नत्वा मूर्ध्नाचरणयोः सद्गुरोः परश्रद्धया।
यल्लिखितञ्च यत्प्रोक्तं, सर्वमेतत्समर्पये॥

अत्यन्त श्रद्धा से सद्गुरुदेव के चरण कमलों में मस्तक नवाता हुआ, जो कुछ लिखा व कहा गया है यह समस्त उन्हीं को समर्पित कर रहा हूं। इतिशम्।

गंगापुर सिटी का यौगिक सत्संग

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

कालचक्र, युगचक्र एवं जगचक्र को एक साथ चलाने वाले, अखिल ब्रह्माण्ड नायक, परमयोग योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं आराध्यदेव सर्व समर्थ पूर्ण योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की करूण कृपा से "श्री सिद्ध गुफा सवाई धाम, योग साधक मण्डल गंगापुर सिटी जिला सवाई माधोपुर (राजस्थान) का योग साधन शिविर यौगिक सतसंग के रूप में दिनांक १० जुलाई से पन्द्रह जुलाई निनानवे को आरदरणीय भाई श्री राम मनोहर तिवारी के सैनिक नगर स्थित आवास पर महान आनन्द एवं उत्साह के साथ मनाया गया। गुरूभाई श्री तिवारी जी के निवास स्थान को कम से कम उपरोक्त अवधि। के लिये आश्रम जैसा कह लिया जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। आवास में प्रवेश करते ही बाई तरफ एक बड़ा हाल था जिसमें श्री सद्‌गुरूदेव भगवान एवं योगेश्वर प्रभु श्री राम लाल जी महाराज का काफी बड़ा स्वरूप खूब अच्छी प्रकार वस्त्र–माला–मुकुट एवं सुगन्धित फूल की मालाओं से श्रृंगार कर अच्छी प्रकार मन्दिर के आकार की बनी आकृति में सजाकर रखा गया था। इस पूरे हाल में फर्स (दरी) बिछायी गयी थी एवं बिजली के करीब नौ सिलिंग फैन एवं दो कूलर प्रचण्ड गर्मी से राहत देने के लिये बराबर या तो बिजली से या जनरेटर द्वारा चलते रहते थे। स्वरूपों के बगल में, उनसे कुछ नीची ऊँचाई पर किनारे के तरफ तीन तख्त रखकर उस पर गद्दा व मसन्द रखा गया था, जिस पर हमारे विद्वान प्रवचन कर्ता आदरणीय गुरूभाई विराजमान होकर योग पर प्रवचन एवं संगीत के माध्यम से यौगिक चरित्रों का वर्णन जिज्ञासु एवं साधक समुदाय को सुना रहे थे।

दस जुलाई से चौदह जुलाई तक कार्यक्रम इस प्रकार रहा कि प्रातः पांच बजे से साढ़े सात बजे तक **"जीवन तत्व साधन"** एवं यौगिक आसन सामूहिक रूप से सीखने वालों को अपने दिल्ली आश्रम से पधारे आदरणीय ब्रह्मचारी श्री वेदरामजी द्वारा कराया जाता रहा। किसी विशेष अंग के कष्ट के लिये भी आदरणीय भाई वेदराम जी द्वारा अभीष्ट योगासन भी बतलाया जाता रहा। प्रातः साढ़े सात बजे से साढ़े आठ बजे तक संकीर्तन हमारे आदरणीय वरिष्ठ गुरूभाई श्री ज्ञानी बाबा द्वारा किया जाता रहा। साढ़े आठ से साढ़े ९.३० बजे के बीच श्री ज्ञानी बाबा द्वारा आरती एवं आदरणीय ब्रह्मचारी श्री दासलाल जी द्वारा गीता पाठ एवं उसका सरल सुबोध अर्थ समझाया जाता था। साढ़े नौ बजे से ग्यारह बजे तक यौगिक प्रवचन होता रहा जिसके मुख्य वक्ता आदरणीय ब्रह्मचारी श्री दासलाल जी एवं आदरणीय गुरूभाई आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा जी थे जिन्हें गुरूदेव भगवान की कृपा से यौगिक विद्या का प्रायोगिक अनुभव है। ग्यारह बजे से सायंकाल तीन बजे तक का समय भोजन एवं विश्राम का रहता था। सायंकाल तीन बजे से छः बजे तक का समय महिला सतसंग का था। जो श्री ज्ञानी बाबा की अध्यक्षता में आनन्द के साथ सम्पन्न हुआ। इस समय में ज्ञानी बाबा द्वारा गाये गये यौगिक कथावली तथा सवाँई धाम से पधारे आदरणीय ब्रह्मचारी श्री रघुराज जी द्वारा गाये गये श्री प्रभू जी की कृपा मय कथायें एवं भगवान श्री कृष्ण का लीला वर्णन विशेष आकर्षण का विषय

अन्त तक बने रहे। सायंकाल सात बजे से रात्रि आठ या साढ़े आठ बजे तक सायंकालीन भजन एवं आरती होती थी एवं उसके बाद साढ़े दस बजे रात्रि तक विद्वान द्वय आदरणीय श्री चन्द्रहास जी शर्मा आचार्य एवं आदरणीय ब्रह्मचारी श्री दास लालजी द्वारा योग के सार गर्भित रहस्यों को अनुभवगम्य सरल भाषा में समझाया जाता रहा। इसके बाद भोजन एवं रात्रि विश्राम होता था।

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा जी ने साधन योग एवं सिद्ध योग का भेद बतलाया एवं समझाया कि साधन योग में योगी साधक की साधना (परिश्रम) उसके लक्ष्य प्राप्ति का मुख्य भाग है, वहीं सिद्ध योग में गुरूदेव की प्रसन्नता एवं आहलाद ही लक्ष्य प्राप्ति का मुख्य अंश है। इस तारतम्य में आचार्य श्री ने समझाया कि कम से कम चौबीस घण्टे में दो घण्टे प्रातः पाँच बजे से सात बजे तक मंत्र जप एवं एक घण्टे ध्यानाभ्यास करना गुरूदेव की प्रसन्नता का कारण बन जाया करता है। आपने समझाया कि अपने जीवन को संयमित एवं नियंत्रित करके श्री गुरूदेव भगवान के चरण कमलों का स्मरण करते हुये, योगारूढ़ होने का प्रयत्न करो, आराध्यदेव की करूणा कृपा से अवश्य ही मार्ग का ज्ञान हो जावेगा। आपने यह भी समझाया कि योग साधना आरम्भ करते ही मन एकाग्र होने पर शक्तियों का आभास होने लगता है परन्तु ऐसे समय साधक को विशेष सावधान रहने की जरूरत है ताकि उसके योग की कमाई रंचमात्र भी खर्च न हो। इस समय यदि साधना की गयी एवं खर्च पर बिल्कुल नियंत्रण रहा तो साधक धीरे–धीरे योगी बन जाया करता है। उसके बाद उसे किसी के सामने हाथ जोड़ने या हाथ फैलाने की बिल्कुल ही आवश्यकता नहीं होती, वह तो दाता बन जाया करता है।

अपने यौगिक प्रवचन के द्वारा आदरणीय ब्रह्मचारी श्री दासलाल जी ने श्री गुरूदेव एवं शिष्य के भेद को समझाया। आप ने गुरू एवं शिष्य भेद का निरूपण इस प्रकार बतलाया–

पहली अवस्था में यदि गुरू, सर्वशक्ति सम्पन्न श्री सद्‌गुरू है एवं शिष्य श्रद्धा का पुतला है या यों कहा जाय कि बिल्कुल–बिल्कुल आज्ञा पालक है तो शिष्य का कल्याण होने में कुछ पल ही लगता है। इस तथ्य को समझाने के लिये आपने महाप्रभु द्वारा श्री हरिहर शर्मा को सर्व समर्थ योगी श्री हरिहरानन्द जी बनाने का कथानक सरल एवं सुगम्य भाषा में समझाया।

दूसरी अवस्था में यदि गुरूदेव सर्वथा सद्‌गुरू है एवं शिष्य महान दुरात्मा या पापात्मा है परन्तु श्री सद्‌गुरू अपने किसी बालक पर प्रसन्न हो गये तो उसके भी योगी बनते देर नहीं लगती। इस रहस्य को समझाने के लिये सुश्री रामरती की सत्य वादिता पर प्रसन्न होकर श्री प्रभू जी द्वारा उसके उद्धार की कहानी को संक्षेप में सुबोध भाषा में समझाया गया।

तीसरी अवस्था को इस प्रकार समझाया गया कि श्री गुरू के अन्दर नाम मात्रा का आध्यात्मिक प्रकाश हो परन्तु शिष्य श्रद्धा का पुतला हो, एवं अपने गुरूदेव का आज्ञा पालक हो तो शिष्य अपनी श्रद्धा के बल पर पूर्णता को प्राप्त कर सकता है, वैसे यह कार्य बड़ा ही कठिन एवं दुरूह है। इसमें एक लव्य का उदाहरण दिया गया।

दस जुलाई से चौदह जुलाई तक का यह सत्संग उपरोक्त वर्णित समय एवं कार्यक्रमानुसार सम्पन्न हुआ। कुछ गुरूभाई– बहनों ने रात्रि जागरण भी चौदह की रात्रि को किया। पन्द्रह जुलाई को ब्रह्म मुहुर्त में

ही श्री सद्गुरूदेव जी महाराज एवं योगेश्वर प्रभु श्री राम-लाल जी के स्वरूप का वस्त्र नया बदला गया एवं फिर नये सिरे से खूब अच्छी प्रकार श्रृंगार करके परदा लगा दिया गया। हवन श्री तिवारी जी (सपत्नीक) वहाँ उपस्थित हमारे श्री गुरूभाईयों एवं एक वेद पाठी पण्डित जी द्वारा किया गया। हवन की एक विशेषता यह भी रही कि पूरी गुरुगीता के श्लोकों एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के परम पवित्र १०८ नामों द्वारा "स्वाहा" की ध्वनि के साथ सम्पन्न हुआ। इसके बाद दोनों दिव्य स्वरूपों का परदा जय-जय कारों की गगन भेदी आवाज के साथ हटाया गया एवं आदरणीय ज्ञानी बाबा द्वारा सामूहिक आरती की गयी।

आरती के पश्चात् सर्वप्रथम ब्रह्मचारी भाईयों ने श्री प्रभु जी एवं महाप्रभु जी के स्वरूपों का पूजन एवं आरती की, उसके तुरन्त बाद पूजन का कार्यक्रम जो करीब दस बजे प्रारम्भ हुआ अपराह्न एक बजे तक तो चलता ही रहा। साढ़े ग्यारह बजे दिन के करीब पूज्य ब्राह्मणों को भोजन कराना आरम्भ हुआ एवं उसके बाद हमारे भाई-बहनों के भोजन का क्रम आरम्भ हुआ वो सूर्यास्त, यों कहा जाय कि प्रथम प्रहर रात तक चलता रहा। इस प्रकार इस सतसंग समारोह का यह महान शिक्षाप्रद उत्सव सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम को अपने संगीतमय भजनों से आकर्षक एवं शिक्षाप्रद बनाने में करौली के साधकों ने भी अहम भूमिका निभायी।

उत्सव के अन्तिम दिनांक पन्द्रह जुलाई निनानवे को श्री सिद्ध गुफा योग प्रचार मण्डल कानपुर द्वारा इस गंगापुर सिटी योग प्रचार मण्डल को भेजा गया तैंतीस करोड़ देवताओं से युक्त परम योग योगेश्वर दादा गुरूदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का दिव्य स्वरूप एवं एक और दिव्य स्वरूप जिसमें सदाशिव, योगेश्वर प्रभु श्री राम लाल जी महाराज एवं योगीराज श्री मुलखराज का स्वरूप था, कानपुर के आदरणीय गुरुभाई श्री आर० सी० ठाकुर द्वारा जब श्री मनोहर तिवारी जी को सौंपा गया एवं उन्होंने तत्काल इन दो दिव्य स्वरूपों को श्री गुरूदेव भगवान की जै, महाप्रभु की गगनभेदी जयकारों के साथ, जब विराजमान कराया गया उसके अगले क्षण आदरणीय वरिष्ठ गुरुभाई श्री ज्ञानीबाबा द्वारा प्रात: की सामूहिक आरती आरम्भ की गयी, मानों आज की प्रात: आरती को इन दिव्य स्वरूपों का बेसब्री से इन्तजार था। सभी उपस्थित साधक समुदाय ने इन दिव्य स्वरूपों की मनोहारी छवि की प्रशंसा की। इन स्वरूपों से महाप्रभु की यौगिक सम्पन्नता एवं पूर्णता का प्रस्फुटन हो रहा था।

इस कार्यक्रम का लाभ इस शहर के साथ-२ अन्य ग्रामों एवं शहरों के करीब हजारों लोगों ने उठाया। इन जिज्ञासु योग साधकों की ऐसी श्रद्धा थी जिसका केवल अनुभव किया जा सकता है, लिपि बद्ध नहीं किया जा सकता। ऐसे योग परक, सत्संग अवश्य ही साधक का कल्याण किया करते हैं। इस कार्यक्रम में दिल्ली, सालवन, सवाँई, वाराणसी और कानपुर के गुरुभाई बाहर से पधारे हुये थे जिनके निवास-भोजन की समुचित व्यवस्था थी।

गंगापुर सिटी में मनाया गया यह यौगिक सतसंग अपने आप में बड़ा ही शिक्षाप्रद, ग्राह्य एवं अनुकरणीय रहा। यद्यपि सर्व समर्थ गुरुदेव भगवान एवं अकारण दयालु परम योग योगेश्वर दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी माहराज की करूण कृपा के बिना इस प्रकार का सतसंग बिल्कुल ही असम्भव है तथापि तन, मन एवं धन से इस कार्यक्रम के लिये पूर्ण श्रद्धा के साथ समर्पित आदरणीय श्री राम मनोहर तिवारी तथा आराध्यदेव के प्रिय गुरुकृपा पात्र अन्य बालक अवश्य ही प्रशंसनीय हैं। ***

गीता जी में भक्ति योग

स्वामी केशवाचार्य चन्दोह

श्री मद्भगवद्गीता में बारहवें अध्याय के आरम्भ में अर्जुन योग योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण से यह प्रश्न पूछते हैं कि जो अनन्य प्रेमी भक्त जन निरन्तर आपके भजन और ध्यान में लगे हुए आपके सगुण रूप की उपासना करते हैं, और जो ज्ञानी जन आपके अविनाशी सच्चिदानन्द निर्गुण निराकार तत्व को उपासना करते है, उन दोनों में उत्तम योग वेत्ता योगी कौन है ?

वास्तव में यदि विचार किया जाय तो यह प्रश्न योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण को अत्यन्त कठिन परिस्थिति में रख देता है। यदि कोई व्यक्ति माता से यह पूछे कि उसका प्रेम उसके पाँच वर्ष के बालक पर अधिक है कि पच्चीस वर्ष के युवा पुत्र पर ? उस समय माता की जो स्थिति होगी, वैसी ही स्थिति भगवान की यहाँ पर हुई है। क्योंकि माता की दृष्टि दोनों पर समान हो है। किन्तु प्रत्यक्ष सत्य इसके विपरीत ही है। माता पाँच वर्ष के बालक के सभी काम स्वयं करती है। और पच्चीस वर्ष के युवक पुत्र को अपने काम अपने हाथों से ही करने पड़ते है। इसलिए भगवान् इन दोनो प्रकार के भक्तों का वर्णन करते समय अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहते है–

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।
ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।। (गीता १२/२,३,४)

उपर्युक्त श्लोकों में भगवान स्पष्ट रूप से कहते है कि दोनों प्रकार के भक्त मुझे ही प्राप्त होते हैं– दोनों ही मेरे हैं और मैं दोनों का हूँ। किन्तु जहाँ साधना का प्रश्न आता है, वहाँ दोनों में अन्तर है यद्यपि सगुणोपासक और निर्गुणोपासक दोनो का लक्ष्य, दोनों का साध्य एक ही है, फिर भी साधना की दृष्टि से सगुणोपासना सीधी, सरल और सुखद है तथा निर्गुणोपासना टेढ़ी, कठिन और दुरुह है। इस भूमिका का स्पष्टीकरण करते हुए ही भगवान कहते है–

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।। (गीता १२/५)

अर्थात् सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान, सर्वव्यापी, निराकार ब्रह्मस्वरूप परमात्मा के निर्गुण भाव की प्रतीती बुद्धिगम्य और अव्यक्त होने के कारण इन्द्रियों द्वारा उसकी अनुभूति नहीं होती। इसी कारण निर्गुण की उपासना क्लेशमय होती है। किन्तु दोनों प्रकार के स्वरूपों में जो परमेश्वर अचिन्त्य, सर्वसाक्षी, सर्वव्यापी

और सर्वशक्तिमान होते हुए भी हमारे ही समान हमसे बातचीत करेगा, हमारे ऊपर ममत्व रखेगा जिसे हम अपना कह सकेंगे जो हमारे सुख–दुखों को सुन और समझ सकेगा, और हमारे अपराधों को क्षमा कर देगा और जिसे हम अपना और हमें अपना कह सकेगा जिससे ऐसा प्रत्यक्ष सम्बन्ध बाँधा जा सकेगा, जो पिता के समान हमारी रक्षा करेगा, जो हमारा भाई, पति, पोषण कर्ता, स्वामी, साक्षी, विशान्तिस्थान, आधार और सखा है और जो माँ के समान अपने छोटे बालक की भाँति सँभालेगा ऐसा जो सत्य संकल्प, सकलैश्वर्य सम्पन्न, दयासागर, भक्तवत्सल, परमपावन, परमोदार, परम कारुणिक, परमपूज्य, सर्वसुन्दर, सकलगुणनिधान, सगुण और प्रेममय परमेश्वर है, उसका स्वीकार मनुष्य भक्ति करने के लिए सहज ही कर लेगा। कहने का तात्पर्य यह है कि सगुण भक्तियोग साधन मार्ग राजमार्ग है और निर्गुणोपासना का मार्ग झाड़ियों से संकुलवन पथ है । इस सगुणभक्तियोग मार्ग का रहस्योद्घाटन भगवान गीता के नवें अध्याय के आरम्भ में करते हैं–

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्।। (गीता ९/१–२)

अर्थात् सगुणोपासना, राजयोग या भक्तियोग मार्ग ज्ञान विज्ञान से संयुक्त, परम पवित्र, प्रत्यक्ष, धर्म युक्त और सुखकर हैं। किन्तु यह बात समझ में आनी बहुत कठिन है। इसलिए भगवान ने इसे **'राजविद्याराजगुह्यम्'** कहा है।

जिस प्रकार ज्ञानयोग का मुख्य आधार शक्ति और बुद्धि है, उसी प्रकार भक्तियोग का मुख्य आधार श्रद्धा और विश्वास है। श्री सद्गुरुदेव जी के श्री चरणों में श्रद्धा और विश्वास रखना भक्तियोग का साङ्गोपाङ्ग चरम शिखर है। जगत में ईश्वरी सत्ता की प्रतीति के लिए ग्रन्थों के अध्ययन, अभ्यास, विद्वत्ता, अधिकार इत्यादि की आवश्यकता नहीं है। मान लिया जाय कि एक जंगली मनुष्य किसी जंगल में सो गया है, और वह जब उठता है, तब अपने चारों ओर पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, पर्वत, नदी, इत्यादि को देखता है, और विचार करता है कि ये सब मैंने तो तैयार किये नहीं और मैं कर भी नहीं सकता। फिर ऐसी कोई वरिष्ठ सत्ता होनी ही चाहिये, जिसने यह चित्र–विचित्र और आश्चर्यमय जगत निर्माण किया है। इसी प्रकार यदि थोड़ा और विचार किया जाय तो सहज ही यह समझ में आ जाएगा कि इस बाह्य जगत् की प्रतीति का कारण मेरे अन्दर ही है। अर्थात् वह मेरे पास ही है। क्योंकि मैं हूँ और मेरा अस्तित्व है। तभी मेरे लिए बाह्य जगत और उसके दृश्यों का अस्तित्व है। जगत में सुगन्ध है, इसकी प्रतीति घ्राणेन्द्रिय द्वारा होती है। नाक के बिना चमेली, जूही, मोगरा गुलाब आदि की सुगन्ध निरर्थक है। इसी प्रकार रसों की प्रतीति जिह्वा से, सुन्दरता की प्रतीति नेत्रों से होती है।

अब प्रश्न यह है कि यह बाह्य दृश्य जगत अचिन्त्य प्रभु सत्ता द्वारा क्यों निर्मित हुआ ? इसका एक उत्तर यह हो सकता है कि प्राणी मात्र को ऐश्वरी सत्ता की प्रतीति हो, ईश्वर पर श्रद्धा और विश्वास हो– इसके लिए ही यह समस्त जगत् निर्माण किया गया है। परन्तु यह उत्तर बौद्धिक है। इससे भी अधिक हृदयग्राही उत्तर यह है कि यह समस्त विश्व मेरे ईश्वर ने मेरे लिए ही निर्माण किया है। इस उत्तर से विश्वम्भर, विश्व और मेरे बीच का जो व्यवधान है, जो पर्दा है, वह हट जाता है। और मेरा एवं प्रभु का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का अर्थात् प्रिय और प्रियतम का स्थापित हो जाता है। विश्वरूप दर्शन के पश्चात् अर्जुन गीता में यही बात कहते हैं–

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः।
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥ (गीता ११/४४)

'पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के, पति जैसे प्रियतमा पत्नी के अपराध सहन करता है– वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने योग्य हैं।' अर्थात् केवल सत्य का अनुशीलन ही पर्याप्त नहीं है। (केवल ईश्वरी सत्ता का ज्ञान ही सब कुछ नहीं है) किन्तु बाहर भीतर उसी से ओत प्रोत हो जाना ही सच्चा भक्तियोग है। यदि एक शब्द में कहा जाय तो– "गोपीवत्"। प्रभास क्षेत्र में गोपियों ने भगवान् के व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप का वर्णन करते हुए जो भक्तियोग का रहस्योद्घाटन किया है, वह अत्यन्त हृदयग्राही है–

आहुश्च ते नलिनाभ पदारविन्दं।
योगेश्वरै र्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः॥
संसार कूपपतितोत्तरणावलम्बं।
गेहंजुषामपिमनस्युदियात् सदानः ॥ (श्रीमद्भा० १०/८२/४९)

'हे पद्मनाभ ! तुम्हारे चरणारविन्द अगाधज्ञानी योगेश्वरों द्वारा हृदयों में चिन्तनीय बताए गये हैं। संसार कूप में गिरे हुए हम जीवों के अवलम्बरूप ये चरण गृहस्थी की झंझटों में फंसी हुई हम सबके हृदयों में भी सदा प्रगट रहें–

उक्त प्रकार से प्रभु का सम्बन्ध हो जाने के पश्चात् प्रत्येक देश–काल और परिस्थिति में, प्रत्येक व्यवहार में प्रभु स्मरण होता रहेगा। इस प्रकार के प्रेम की प्रतीति उसमें श्रद्धा और विश्वास तथा दृढ़ता का नाम ही भक्ति योग है। इस प्रकार के प्रेम–सम्बन्ध को जानने के लिए किसी प्रकार के अधिकार–विशेष, विद्वत्ता तर्क या अनुमान की आवश्यकता नहीं है। जिस प्रभु शक्ति ने जगत के लिए हवा–पानी और सीखने के लिए ज्ञान (संवेदन शक्ति) की निःशुल्क व्यवस्था की है, उसको जानना और समझना कितना सीधा और सरल है। श्री सद्गुरुदेव जी की कृपा से ईश्वरी सत्ता को अपना लेने पर यह सहज ही समझ में आ जाता है कि रात दिन प्रभु मुझे संभालते हैं। जगाते हैं, सुलाते हैं, खाया हुआ पचाते हैं, मेरे शरीर में रहकर मेरी रक्षा करते हैं। उन्हीं की सामर्थ्य से मेरी जीवन–नौका चलती है। मेरी प्रत्येक कृति उन्हीं की सत्ता से सम्पन्न

होती है। अतएव इन्द्रियाँ भी मेरी नहीं और उनके व्यापार भी मेरे नहीं। इसलिए प्रत्येक कर्म प्रभु का अर्पण करना– यही मेरा काम है। मेरी धारणा है कि गीता के निम्न श्लोक में यही प्रति पादन किया गया है।–

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।। (गीता ९/२६)

गीता में अर्जुन की भूमिका एक संशयात्मा की भूमिका है। गीता के प्रथम अध्याय में अर्जुन बुद्धिवाद द्वारा अपनी कर्त्तव्य च्युति को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। इस बुद्धिवादी संशय का उत्तर भगवान् गीता के सातवें अध्याय तक बुद्धिवाद द्वारा ही देते हैं। इसके फलस्वरूप अर्जुन को बौद्धिक शान्ति प्राप्त होने के पश्चात् आठवें अध्याय के आरम्भ में आधिभौतिक और आध्यात्मिक जगत के रहस्यों को जानने की इच्छा से यह प्रश्न पूछते हैं–

किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम्।
अधिभूतं च: किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते।।
अधियज्ञ: कथं कोऽत्र देहेस्मिन् मधुसूदन।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभि:।। (गीता ८/१–२)

अर्जुन के उक्त प्रश्नों का उत्तर भगवान् गीता के आठवें और नवें अध्यायों में विस्तार पूर्वक देते हैं। इससे अर्जुन की सूक्ष्म जगत–सम्बन्धी शंकाओं का समाधान हो जाता है। और वे भगवान श्री कृष्ण के तात्विक स्वरूप को जान लेने पर कहते हैं–

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्।
पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम्।। (गीता १०/१२)

किन्तु परब्रह्म के उक्त स्वरूप को जान लेने के और समझ लेने के पश्चात् स्वभावत: अर्जुन के मन में उसके प्रत्यक्ष दर्शन की इच्छा जागृत होती है और ग्यारहवें अध्याय में विश्वरूप दर्शन के पश्चात् अर्जुन की समझ में आता है कि यह स्वरूप इतना महान है कि इसकी उपासना या भक्ति करना असम्भव है। अतएव वह फिर भगवान से सौम्यस्वरूप कृष्ण रूप धारण करने की प्रार्थना करता है। इस प्रकार ग्यारहवें अध्याय तक अर्जुन के सभी संशयों का उच्छेद हो जाता है। और वह नि:संशय हो जाता है। तथापि भगवान् उससे अपने उपदेशों के अनुसार जो कार्य कराना चाहते थे, उसे करने की उत्कण्ठा अर्जुन में नहीं दिखाई देती। बुद्धिवाद का यह वैगुण्य अत्यन्त महत्वपूर्ण और ध्यान देने योग्य है। संशय–शमन के पश्चात् कृतिशीलता अथवा प्रभु–कार्य करने की उत्कट अभिलाषा का निर्माण करने के लिए ही भगवान् को बारहवें अध्याय में फिर से भक्तियोग का रहस्य विस्तार पूर्वक अर्जुन को समझाने की आवश्यकता हुई। क्योंकि केवल ज्ञान द्वारा नि:संशय हुआ जीव पंगु और स्थिर हो जाता है। उसे फिर से कृतिशील बनाने के लिए श्रद्धा की प्रेरक शक्ति की आवश्यकता होती है। इसी प्रेरक शक्ति का नाम ''भक्ति योग'' है।

अर्जुन की इस स्थिति का मुख्य कारण यह है कि भगवान ने गीता में दूसरे अध्याय से आठवें अध्याय तक जिस बुद्धियोग (कर्मयोग) का तर्क शुद्ध मार्ग दर्शन किया वह अभीष्ट फलदायी है। यह बात अर्जुन की समझ में आ गयी। किन्तु प्रत्यक्ष कर्म करते हुए उसके फल में निरपेक्षता और अहंकार--शून्यता का जो उपदेश श्री कृष्ण ने दिया, वह उसकी समझ में नहीं आया। प्रत्यक्ष कर्म करते हुए फल निरपेक्ष और अहंकार--शून्य रहना बहुत कठिन है। ऐसा मैं कर सकूँगा, यह विश्वास अर्जुन को नहीं था। अतएव कृतिकालीन अहंकर्तृत्व और कर्म फल के त्याग से भी सरल-- कृत्युत्तर सभी कृतियाँ ईश्वरार्पण करने का एक अन्य पर्याय अर्जुन के सामने रखकर भगवान ने भक्तियोग का एक नया संदेश और मार्ग प्रतिष्ठापित किया।

गीता में जो ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय कर्मयोग में किया गया है, उसके दो पक्ष हैं-- एक आन्तर भक्ति और दूसरी बहिर्भक्ति। आन्तर भक्तियोग द्वारा व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास और बहिर्भक्ति द्वारा व्यक्तिगत विकास को समष्टि के विकास में जोड़ना होता है। इन दोनों प्रकार की भक्तियोग के समन्वय का नाम ही पराभक्तियोग या फलस्वरूप भक्तियोग है। आन्तर भक्ति में सगुणोपासना द्वारा चित्त शुद्धि एवं चित्तैकाग्रता तथाध्यान द्वारा पूर्णता का अनुभव प्राप्त करने का रहस्य गीता में समझाया गया है। परमात्मा का यह जगत है। यह समझकर अध्ययन, मनन, चिन्तन, एवं विधिध्यासन द्वारा प्रभु के ज्ञानमय और प्रेममय स्वरूप की भक्त करने का मार्गदर्शन जगत को देने के कार्य में योगदान करना यही बहिर्भक्ति है। विश्वम्भर और विश्वरूप परमेश्वर दोनों की उपासना एक साथ चलनी चाहिये। जो लोग ऐसा नहीं करते और केवल खाना--पीना मौज करना ही जीवन का लक्ष्य मानते हैं, उनके लिए भगवान कहते हैं--

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतस:।

राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिता:।। (गीता ९/१२)

अर्थात् ऐसे वृथा आशा, वृथा कर्म, और वृथा ज्ञान वाले अज्ञानी जन राक्षसी, आसुरी एवं मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं।

आज इस जगत में जड़वाद चारों ओर नग्न नृत्य कर रहा है। मानव जीवन में सदाचार, नैतिकता, सात्विकता सुसंस्कारिता, पूज्य सद्गुरुदेव के प्रति आदर भाव और ईश्वर प्रेम का नितान्त अभाव हो गया है। इस जड़वाद के विरुद्ध जो भगवद्भक्त प्रभु कार्य करने के लिए अपना समस्त जीवन अर्पण करते हैं, उनको आश्वासन देते हुए श्री भगवान् कहते हैं--

अनन्याश्चिन्तयन्तोमां ये जना: पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। (गीता ९/२२)

अर्थात् ऐसे प्रभु कार्य में सतत् संलग्न भक्तों का मैं योगक्षेम स्वयं चलाता हूँ। जो भक्त ऐसा नहीं कर सकते, किन्तु यथाशक्ति, यथोचित्त एवं यथा समय प्रभु कार्य करने के लिए तैयार रहते है उन्हें भी भगवान्

आश्वासन देते हुए कहते हैं। कि–

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः।। (गीता ९/२६)

जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र–पुष्पादि मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ। किन्तु यदि कोई यह कहे कि मैं पढ़ा लिखा नहीं हूँ, मुझसे प्रभु कार्य कैसे हो सकेगा, अथवा मैं दुराचारी हूँ, मैं क्या करूँ ? उन्हें भी भगवान आश्वासन देते हुए कहते हैं कि–

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। (गीता ९/३०–३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है। क्योंकि वह यथार्थ निश्चय मानने वाला है। अर्थात् उसने भली–भांति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है। और सदा रहने वाली परम शान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन ! तू निश्चय पूर्वक सत्यजान कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता है। यही श्री मद्भगवद्गीता जी के भक्ति योग का सार तत्व है। भक्तियोग के द्वारा जीव परम तत्व तक पहुँचने में सर्व समर्थ हो जाता है।

***

सुख अथवा दुःख का वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह मानसिक अवधारणाओं के कारण है। इसके लिए जीव सृष्टि उत्तरदायी है। जीव भाव को समाप्त कर दो न दुःख रहेगा न सुख, किन्तु सदैव के लिए केवल आनन्द ही रहेगा। जीव भाव को समाप्त करने का तात्पर्य है आत्मा में वास करना।

दैनिक आरती का रहस्य

केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

पवित्रम श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश की सिद्ध सेवित भूमि पर आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज दरबार के सामने आराम कुर्सी पर विराजमान थे। गंगा दशहरा का महोत्सव दो दिन पूर्व समाप्त हो गया था। आराम कुर्सी के अगल–बगल श्री गुरुदेव भगवान की शिष्य मण्डली बैठी हुयी थी। अपराहन का लगभग चार बजे का समय था। श्री प्रभु जी अपने बच्चों का पत्रोत्तर लिख एवं लिखा रहे थे। यह कार्य जब समाप्त हो गया तो हमारे एक गुरुभाई ने प्रार्थना की कि प्रभो ! दैनिक आरती की रचना कब, किसने की ? श्री गुरुदेव भगवान ने जो रहस्य बतलाया वह इस प्रकार है। उन्हीं के मुखारविन्द से निकले वचन ''हमारे गुरुभाई आदरणीय ब्रह्मचारी श्री गोपालानन्द जी महाराज ने बड़े ही लगन के साथ देवताओं द्वारा की जाने वाली आरती को ध्यान से सुना और ध्यान से उठने के बाद उसे कागज पर नोट कर लिया और उसे लेकर प्रभुजी के चरणों में उपस्थित होकर प्रणाम किया एवं प्रार्थना की कि प्रभो ! यह गोलोक धाम द्वारा की जाने वाली आपकी आरती है। श्री प्रभु जी ने उनके द्वारा लिखी गयी आरती को देखा और देखने के बाद कहा कि अरे ब्रह्मचारी ! यह तो तुमने केवल आधी आरती नोट की है, अभी आरती बाकी है। श्री ब्रह्मचारी जी ने निवेदन किया कि प्रभो ! अब शेष भाग कैसे मिल पायेगा? प्रभुजी ने आदेश दिया कि ध्यान में बैठकर शेष भाग भी नोट कर लो। ब्रह्मचारी जी ने निवेदन किया कि प्रभो ! अब तो गोलोकधाम की आरती समाप्त हो गयी होगी। श्री प्रभुजी ने अपने मुखारविन्दु से समझाते हुए कहा कि बेटा ! गोलोक धाम की आरती समाप्त हो गयी होगी, परन्तु शब्द आकाश का धर्म है अर्थात् एक बार निकला हुआ शब्द सदैव आकाश में विद्यमान रहता है। अतः तुम उसे यौगिक विधि से सुनने का प्रयत्न करो, वह शब्द तुम्हें सुनायी दे देगा। श्री प्रभुजी की आज्ञा शिरोधार्य कर ब्रह्मचारी जी तत्काल ध्यान में बैठ गये। उनकी ध्यान की प्रक्रिया आरम्भ होते ही उन्हें फिर आरती सुनायी देने लगी। श्री ब्रह्मचारी जी ने फिर विधिवत् आरती सुनी एवं सुनकर ध्यान से उठकर उसे कागज पर लिखा। उसे लेकर श्री चरणों में फिर उपस्थित हुए एवं साष्टांग प्रणाम कर प्रभुजी के करकमलों में अर्पित की। श्री प्रभुजी ने कहा कि हाँ अब हुई न पूरी आरती। तब से या यों कह लिया जाय कि उसी दिन से यह आरती आरंभ हुयी। यह कोई कवि या योगी द्वारा बनाई गयी आरती नहीं है, बल्कि यह वह दिव्य आरती है, जिसके द्वारा गोलोकवासी हमारे दादा गुरुदेव जी की आरती किया करते हैं।-

अपरिपूर्ण श्रद्धावान साधकों के मन में इस घटनाक्रम को पढ़कर साधक को अपने आराध्यदेव एवं उनकी की जाने वाली इस दिव्य आरती के प्रति श्रद्धा बढ़ना स्वाभाविक ही है। परन्तु इस घटनाक्रम को यदि कोई साधक जो अन्य धर्मावलम्बी है या जिनके इष्टदेव कोई दूसरे हों, यह पढ़कर ऐसा लगना स्वाभाविक सा ही है कि इन्होंने अपने दादा गुरुदेव एवं उनकी की जाने वाली आरती को लिखने में अतिशयोक्ति

अलंकार की सहायता ली है। इससे पहले कि इस विषय पर कुछ और लिखा जाय ऐसी भावना वालों को हम अत्यन्त विनम्र शब्दों में यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि उपरोक्त घटना बिल्कुल सत्य है और हमारे आपके एवं प्राणी मात्र के भाग्य विधाता अकारण दयालु सर्व समर्थ हमारे गुरुदेव जी महाराज इस घटना के चश्मदीद गवाह हैं।

परन्तु उपरोक्त प्रकार की शंका होना साधारणतया सही ही है। यदि हमारे आपके सामने कोई कहे कि हमारे दादा गुरुदेव जी या आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज, श्री राम, श्री महादेव शंकर, जगत जननी भगवती दुर्गा, महावीर हनुमान जी आदि आदि देवताओं से किसी तुलना में कम हैं तो यह बात हम सभी नहीं चाहेंगे कि हमारे कान में प्रवेश करे, उसका मानना तो दूर रहा। गुरुगीता भी यही आदेश देती है कि अपने गुरुदेव को सबसे बड़ा समझो एवं ऐसा मान जानकर चलो कि तुम्हारे गुरुदेव तीनों लोकों के गुरुदेव हैं। हमारे धार्मिक ग्रंथो में भी इसी प्रकार का विरोधाभास है । एक दूसरे वर्णन में सामंजस्य नहीं हो पाता जैसे– भगवान श्री राम के अवतार के समय भगवान शिवशंकर का उनके बाल्यरूप दर्शनार्थ उनके यहाँ जाकर उनका दर्शन करना। जगत माता जानकी का रावण द्वारा अपहरण किये जाने के बाद शंकर प्रिया द्वारा अपनी पत्नी के वियोग में साधारण मनुष्य की तरह विरह वेदना प्रकट करने वाले भगवान श्रीराम को अपना इष्ट कहकर प्रणाम करने के बाद, सती की शंका एवं उसका निवारण आदि प्रसंग देखा जाय तो लगता है कि भगवान श्री राम, भगवान शिवशंकर के इष्ट और पूज्य हैं। दूसरी तरफ भगवान श्री राम जब जगत माता की खोज करते करते अगस्त्य मुनि के पास गये एवं निवेदन किया कि महाराज ! हमारी धर्मपत्नी सीता को रावण चुरा ले गया है, वह बहुत ही पराक्रमी है, हम उसे कैसे परास्त कर पायेंगे। अगस्त्य मुनि ने भगवान श्री राम से कुछ देर तक निवेदन किया एवं उसके बाद निवेदन किया कि महाराज ! आप भगवान शंकर की आराधना करें। भगवान शंकर यदि प्रसन्न होकर आपको अपना पाशुपत शस्त्र प्रदान करें तो आप उस शस्त्र से रावण का वध आसानी से कर देंगे। उनके परामर्श को स्वीकार कर श्री राम ने करीब छः महीने तक भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिए घोर तपश्चर्या एवं आराधना की। उनकी आराधना से प्रसन्न होकर भगवान शंकर ने पाशुपत शस्त्र प्रदान किया जिसकी सहायता से भगवान राम ने असुर रावण का वध किया। इस प्रसंग को सुनकर आपको एवं सबको यही प्रतीत होता है कि भगवान शंकर भगवान राम के इष्ट हैं। इन दोनों चरित्रों में स्पष्ट विरोधाभास है।

इसी प्रकार भगवान श्री कृष्ण के अवतार की सूचना मिलने पर भगवान शंकर द्वारा उनके पास जाकर उनका दर्शन करना एवं उनको प्रणाम करने का प्रसंग लिखा गया है एवं दूसरी तरफ मार्कण्डेय आदि अनेक सिद्ध एवं महर्षि जब एक दिन भगवान कृष्ण के दर्शनार्थ द्वारिकापुरी पहुँचे तो उन लोगों ने जब उनका दर्शन करना चाहा तो पता लगा कि वे पूजा गृह में भगवान शंकर की पूजा कर रहे हैं। जब ये महर्षि भगवान श्री कृष्ण के सम्मुख उचित अभिवादन कर चुके तो मार्कण्डेय जी ने प्रश्न किया कि प्रभो ! आप स्वयं विष्णु हैं, आपको भगवान शंकर की पूजा करने का क्या प्रयोजन ? आप तो स्वयं नारायण हैं। उपरोक्त दोनों चरित्र

भी एक दूसरे के ठीक विपरित दिखलायी दे रहे है। पहली अवस्था में भगवान श्री कृष्ण तो दूसरी अवस्था में भगवान शंकर बड़े प्रतीत हो रहे हैं।

अपने यौगिक कार्यक्रमों का वर्णन करते हए आराध्यदेव जी महाराज ने अपने मुखारबिन्दु से बतलाया कि हमने अयोध्यावासी अपने एक बालक से प्रश्न किया कि लल्ला ! देवताओं में सबसे बड़ा कौन है? तो उसने उत्तर दिया– महाराज ! आप जो भी कहें, सच पूछा जाय तो सबसे बड़े देवता भगवान श्री राम ही हैं, उनसे बड़ा देवता कोई नहीं है। ज्यादा क्या बतलाऊं, भगवान श्री राम से बड़ा न तो कोई देवता हुआ है और न होगा। अपने एक और कार्यक्रम का वर्णन करते हुए श्री मुख ने बतलाया कि एक बार हम नेपाल गये। वहाँ पर कुछ साधक समुदाय चिनूचिड़ी चिनूचिड़ी की ध्वनि का उच्चावरण बड़ी श्रद्धामय एवं तन्मयता से कर रहे थे। जब उनका कीर्तन समाप्त हो गया तो गुरुदेव भगवान ने प्रश्न किया कि ये चिनूचिड़ी–चिनूचिड़ी तुम लोग क्या कर रहे हो ? उस समुदाय के मुखिया साधक ने निवेदन किया कि प्रभो ! यही तो सबसे बड़े संसार के देवता हैं, इनसे बड़ा कोई देवता न तो हुआ है और न होगा। यह था उनका पक्का विचार, जिसको उन सबों ने हमारे आपके आराध्यदेव जी के सामने निवेदन किया।

उपरोक्त सभी प्रसंगों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह बात तथ्य में आती है कि सभी साधक समुदाय अपने अपने इष्ट को सबसे बड़ा समझता है। आखिरकार इसका क्या रहस्य है ? अब हम एक ऐसी घटना का वर्णन करने का प्रयास कर रहे हैं जो अपने सिद्धयोग दरबार की है। एक दिन ध्यान से उठने के बाद सभी साधक समुदाय बारी बारी से अपने अनुभव हमारे आपके दादा गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के चरण कमलों में निवेदन कर रहा था जो योग साधन आश्रम ऋषिकेश में आरामकुर्सी पर विराजमान थे। संयोगवश वहाँ कुछ अन्य पंथ के साधक भी उपस्थित थे। जिसमें एक वैष्णव भक्त भी था। कुछ नये साधक जिन लोगों ने ध्यान में यह दृश्य देखा था कि सभी देवी देवता हमारे दादा गुरुदेव की आरती कर रहे थे, अपने आनन्दकन्द गुरुदेव से प्रश्न किया कि प्रभो ! यदि हम लोगों द्वारा देखा गया यह दृश्य सही है तो कृपया यह समझाने की कृपा करें कि इसका रहस्य क्या है । श्री प्रभु जी अपने लाडले बच्चे का प्रश्न सुनकर मुस्कराये एवं कुछ देर के लिए शान्त से हो गये। इसी बीच वैष्णव भक्त ने कहा कि इसमें रहस्य क्या है, यह तो माया है।

उसकी बात समाप्त हो इससे पूर्व श्री प्रभु जी ने कहा अरे विष्णु पुजारी यह माया नहीं है। यह वास्तविक सत्य है और इससे अन्यथा कोई सत्य नहीं है। इसके पश्चात अपने लाडले ध्यानी बच्चों को संबोधित करते हुए श्री मुख ने कहा कि मेरी तरफ देखो ! इसके पश्चात् उन्होंने अपने हाथ से शरीर को इंगित करते हुए कहा कि ये लोग इसकी पूजा नहीं कर रहे थे, फिर दूसरी बार ऊपर की तरफ इशारा करके कहा कि देवतागण उसकी पूजा कर रहे थे। इससे उसके शब्द का अर्थ जैसा गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारबिन्दु से बतलाया है लिखने का प्रयास कर रहा हूँ। उनके शब्द का अर्थ है श्री सद्‌गुरूसत्ता से। श्री सद्‌गुरूसत्ता

की महत्ता समझाने के लिए श्री गुरूदेव ने गुरू शब्द की व्याख्या श्री पतंजलि योग दर्शन के सूत्र के साथ की जो इस प्रकार है–

स पूर्वेषामपि गुरू: कालेनानवच्छेदात्।

अर्थात् पूर्व में कही गयी वह सत्ता जो काल एवं क्षेत्र की परिधि में नहीं बाँधी जा सकती गुरू कहलाती है। आगे गुरूदेव भगवान ने समझाया कि यदि कोई शरीर इस तत्व से प्रकाशित होता है तो जिस समय वह इस तत्व से परिपूर्ण है उस समय वह सभी का पूजनीय है। इसी तथ्य को आगे समझाने के लिए आनन्दकन्द श्री गुरूदेव जी महाराज ने महाभारत काव्य के अनुगीता अध्याय के एक प्रकरण का उदाहरण दिया। आपने अपने मुखारबिन्दु से समझाया कि जब महाभारत समाप्त हो गया एवं पाण्डव बिल्कुल प्रसन्नचित्त हो गये, अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि प्रभो ! श्री मद्भगवद्गीता एक बार फिर मुझे सुनाने की कृपा करें। आपने गीता सुनायी थी, वह आज मुझे पूर्ण रूप से स्मरण नहीं है।

उसके उत्तर में त्रिभुवन नायक योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्र ने कहा कि हे अर्जुन तूने यह बड़ा ही अज्ञानता एवं बच्चों का कार्य किया है कि उसे विस्मृत कर दिया। सद्गुरूतत्व में विलीन एवं योगयुक्त होकर मैंने वह अमृतमय वाणी तुम पर कृपा करके सुनायी थी। अब तो मैं भी उस विधि विधान से नहीं समझा सकता या कह सकता, जैसा मैंने उस समय कहा था।

इस प्रसंग के बाद एक बात और समझ में स्पष्ट रूप से आ जाती है कि श्री गुरूदेव भगवान की प्रत्येक वाणी को सावधान मन से सुनकर उसके अनुसार तत्काल अपनी साधना आरम्भ कर देनी चाहिए। महात्मा अर्जुन को जब यह सुअवसर दुबारा नहीं मिल पाया तो यह कोई आवश्यक नहीं कि हमको एवं आपको यह सुअवसर दुबारा मिल ही जाये। अतःतीव्र साधनामय जीवन तत्काल आरंभ कर देना चाहिए।

***

आत्म स्वरूप में परमात्मा स्वरूप का अनुभव ही परोक्ष दर्शन की पराकाष्ठा है। इससे स्वयं के हृदय में ही ईश्वर दर्शन किया जा सकता है। जो निरन्तर में ही समस्त भूत और समस्त भूतों में आत्मा को देखता है वह फिर किसी से ऊबता नहीं।

चुप साधन

स्वामी रामसुखदास जी महाराज

परमात्मतत्व की प्राप्तिका श्रेष्ठ से श्रेष्ठ साधन है– चुप रहना अर्थात् कुछ भी चिन्तन न करना। यह सर्वोपरि करण निरपेक्ष साधन है। चिन्तन करने से ही संसार का सम्बन्ध चिपकता है। कारण कि चिन्तन करने, वृत्ति लगाने का अर्थ है– नाशवान, परिवर्तनशील वस्तु को महत्व देना। नाशवान को महत्व देना, उसकी आवश्यकता मानना, उसकी सहायता लेना ही तत्व प्राप्ति में मुख्य बाधा है। अविनाशीकी प्राप्ति नाशवान् के द्वारा नहीं होती प्रत्युत नाशवान के त्याग से होती है। जड़ के द्वारा चेतन की प्राप्ति कैसे हो सकती है। असत् के द्वारा सर्वथा निर्विकार तत्व की प्राप्ति कैसे हो सकती है। नाशवान्, जड़, असत्, परिवर्तनशील क्षणभंगुर से सम्बन्ध विच्छेद होने पर तत्व की प्राप्ति स्वतः ही है। इसलिए नाशवान को महत्व देने का, उसकी सहायता लेने का भाव साधक को आरम्भ से ही नहीं रखना चाहिए। शास्त्र में आया है– **'देवो भूत्वा देवं यजेत्'** देवता होकर देवता का पूजन करें। अतः अक्रिय एवं अचिन्त्य होकर ही अक्रिय एवं अचिन्त्य तत्व को प्राप्त करना चाहिये।

गीता में आया है–

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।

परमात्मस्वरूप में मन (बुद्धि) को सम्यक् प्रकार से स्थापन करके फिर कुछ भी चिन्तन न करें।

तात्पर्य है कि सम्पूर्ण देश, काल, क्रिया, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति घटना आदि में एक ही परमात्मतत्व है' (सत्ता) रुप में ज्यों का त्यों परिपूर्ण है। देश काल आदि का तो अभाव है पर परमात्मतत्व का नित्य भाव है। इस प्रकार साधक पहले मन–बुद्धि से यह निश्चय कर लें कि परमात्मतत्व है। फिर इस निश्चय को भी छोड़ दें और चुप हो जाये अर्थात् कुछ भी चिन्तन न करें। और न परमात्मा का चिन्तन करें। कुछ भी चिन्तन करने से संसार तो आ ही जायेगा। कारण कि कुछ भी चिन्तन करने से चित्त (करण) साथ में रहेगा। करण साथ में रहेगा तो संसार का त्याग नहीं होगा, क्योंकि करण भी संसार ही है। इसलिए 'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्' (कुछ भी चिन्तन न करें)– इसमें करण से सम्बन्ध विच्छेद है। क्योंकि जब करण साथ में नहीं रहेगा, तभी असली ध्यान होगा सूक्ष्म से सूक्ष्म चिन्तन करने पर भी वृति रहती ही है, वृति का अभाव नहीं रहता। परन्तु कुछ भी चिन्तन करने का भाव न रहने से वृत्ति स्वतः शान्त हो जाती है। अतः साधक को चिन्तन की सर्वथा उपेक्षा करनी है।

कुछ भी चिन्तन न करने के बाद यदि अपने आप कोई चिन्तन आ जाये तो साधक उससे न राग करे, न द्वेष करें, न उसको अच्छा माने, न बुरा माने और न अपने में माने। चिन्तन है, वही उसको मिल जाता है। चुप होने से साधक स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों शरीर से सुगमतापूर्वक अतीत हो जाता है तथा उसका अहम् अपने आप मिट जाता है। कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि किसी भी योगमार्ग का साधक क्यों न हो, चुप साधन सभी के लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह चुप साधन सभी शक्तियों का खजाना है, क्योंकि सम्पूर्ण शक्तियाँ अक्रिय तत्व से ही पैदा होती है और उसी में लीन होती है। इस साधन से एक विलक्षण शान्ति मिलती है। जिससे राग–द्वेषादि दोषों को दूर करने की सामर्थ्य स्वतः आती है और अनुकूलता

प्रतिकूलता का असर नहीं पड़ता। इतना ही नहीं, जो लाभ धर्ममेघ समाधि से भी नहीं होता, वह लाभ चुप–साधन से हो जाता है। तात्पर्य है कि चुप साधन सम्पूर्ण साधनों का अन्तिम साधन है, जिसमें पूर्णता हो जाती है अर्थात् 'वासुदेवः सर्वम् (सब कुछ परमात्मा ही है।) ऐसा अनुभव हो जाता है ।

शंका– करण निरपेक्ष साधन का जो विवेचन हुआ है, उसका चिन्तन मनन करेंगे, तभी तो अपने विवेक का आदर होगा। चिन्तन–मनन मन बुद्धि (करण) से ही होता है। फिर यह करण निरपेक्ष साधन कैसे हुआ ?

समाधान– साधन को 'करणनिरपेक्ष (विवेकप्रधान) कहा गया है, करण हित' (क्रियारहित) नहीं। करण निरपेक्ष साधन में जब तक साधक में किञ्चित भी परिच्छिन्नता है, तब तक वह चिन्तन–मनन करता है। पर उसमें मुख्यता चिन्तन मनन करने की अर्थात् तत्व में मन बुद्धि लगाने की न होकर विवेक की ही होती है। अचिन्त्य तत्व की तरफ दृष्टि रहने से उसमें विवेक का आदर मुख्य होता है। तात्पर्य है कि इस विवेचन का लक्ष्य चिन्तन मनन, ध्यान, एकाग्रता, समाधि आदि की तरफ नहीं है, प्रत्युत चिन्तन मनन आदि से अतीत तथा इनको प्रकाशित करने वाला जो वास्तविक तत्व है, उसकी तरफ है।

वास्तव में विवेक का आदर करने के लिए चिन्तन मनन अथवा अभ्यास करने की जरूरत नहीं है। प्रत्युत गलत मान्यता को मिटाकर वास्तविक बात की स्वीकृति करने मात्र की जरूरत है। अभ्यास करणों से होता है। और स्वीकृति स्वयं से होती है। अभ्यास तत्वबोध कभी हुआ नहीं, होगा नहीं, होना सम्भव ही नहीं। कारण कि अभ्यास से एक नई अवस्था बनती है तथा परिच्छिन्नता और दृढ़ होती है। फिर उससे अवस्थातीत तथा अपरिच्छिन्न तत्व की प्राप्ति कैसे हो सकती है। तात्पर्य है कि केवल गलत मान्यता का निषेध करना है, अभ्यास नहीं करना है।

करण सापेक्ष साधन में भी विवेक रहता है। और करण निरपेक्ष साधन में भी करण रहता है। परन्तु करण सापेक्ष साधन में करण (क्रिया) की प्रधानता रहती है। तथा करण निरपेक्ष साधन में विवेक की प्रधानता रहती है। करण सापेक्ष साधन की महिमा भी विवेक के कारण ही है, करण के कारण नहीं। विवेक के बिना करण अन्धा है। अगर करण के साथ विवेक न हो तो करण सापेक्ष साधन चलेगा ही नहीं । इसलिए साधन को 'करणरहित' न कहकर 'करण सापेक्ष' अथवा करणनिरपेक्ष कहा गया है। अगर करण सापेक्ष साधन में से विवेक निकाल दिया जाय तो जड़ता आ जायेगी अर्थात् साधन बनेगा ही नहीं और करण निरपेक्ष साधन में से करण निकाल दिया जाय तो चिन्मयता आ जायगी अर्थात् बोध हो जायेगा, साधन सिद्ध हो जायेगा। विवेक के बिना करण जड़, पत्थर और करण के बिना विवेक बोध है। चिन्मयता (बोध) की प्राप्ति में जड़ की मानी हुई सत्ता ही बाधक है।

विवेक आधा सत् और आधा असत् है अर्थात् विवेक में सत–असत दोनों है, पर करण पूरा असत् ही है ! विवेक में सत–असत् दोनों रहने से असत् तो छूट जायेगा और सत् रह जायेगा। अतः विवेक में तो ग्राह्य (सत्) और त्याज्य (असत्) दोनों अंश रहते है, पर करण में केवल त्याज्य अंश (असत्) ही रहता है।

अतः विवेक तो बोध में परिणत होता है और करण का सम्बन्ध विच्छेद होता है, जो कि पहले से ही है। तात्पर्य यह हुआ कि विवेक में जड़ के त्याग की सामर्थ्य है, पर करण में जड़ के त्याग की सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि करण खुद जड़ ही है।

***

वह एक ही जगदीश्वर जगत और जीव कैसे बना ?

ले. ब्र. ओम प्रकाश, लखनऊ

जिस ईश्वर के विषय में शास्त्र और संत कहते है कि वह ईश्वर निराकार, निर्विकार, अजन्मा, अलेप, सर्वान्तर्यामी क्लेश, कर्म, विपाक, आशय आदि से अछूता है। वह एक है सत है, स्वयंभू है। अकाल पुरुष है वह पञ्च भौतिक सृष्टि तथा जीवात्मा कैसे बन गया ? गीता, उपनिषद वेद आदि में उसी निराकार ईश्वर का साकार, स्थूल रूप यह विराट सृष्टि है। वेद का कथन है कि **''एकोऽहं बहुस्याम्''** के एक संकल्प से उस एक ईश्वर ने ही नाना प्रकार रूप धारण किये है। जड़--चेतन जितना दृश्य या अदृश्य जगत है सब ईश्वर का ही रूप है। रामायण में कहा भी है:

''जड़--चेतन, जग जीव जत संकल्प राम मय जानि।
बन्दहुं सबके पद कमल सदा जोरिजुगपानि।।''

उसी एक ईश्वर ने ही **''लीला कैवल्यं''** के उद्देश्य से उसी ने कौतुक वश लीला भरने के लिए नाना प्रकार के रूप धारण किए हैं। जैसा कि वेद वाक्य हैं **''सः सृष्टि कर्त्ता सः सृष्टिरेव''** अर्थात् वही सृष्टि कर्ता निर्माता है तथा सृष्टि भी वही है। वह जड़ पञ्च भूत की सृष्टि करके वह चेतन पुरुष जड़ को चैतन्य करने के लिए उसी में प्रविष्ट कर गया। रामायण में कहानी है --**''सियाराममय, सब जग जानी। करहुं प्रणाम जोरि जुग पानी।।''** श्री मद्भागवद्गीता में भगवान ने स्वयं कहा भी है--

मत्तः परतरंनान्यतकिञ्चिदस्ति धनंजय।
मयि सर्वमिदं प्रोत्तं सूत्रे मणिगणा इव।।

अर्थात्-- हे धनंजय ! मेरे सिवाय किंचिहनमात्र भी दूसरी कोई वस्तु नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत सूत्र के मणियोंके सदृश्य मेरे में गुथा हुआ है उसी प्रकार मैं संसार की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त हूँ।

उस एक ईश्वर के तीन रूप--प्रथम ईश्वर का ईश्वर रूप जो निर्विकार, निराकार, निर्गुण है। तथा ईश्वर की दूसरा साकार विराट रूप विराट भौतिक सृष्टि है।

उस निराकार जगदीश्वर का जगत दूसरा रूप है। वह निर्गुण निराकार ईश्वर जगत की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। वह निर्गुण निराकार ईश्वर सगुण साकार जगत रूप कैसे बना। अब थोड़ा इस भौतिक पञ्चभुत जगत की उत्पत्ति के विषय में विचार किया जाय। यह स्थूल जगत पञ्चभौतिक तत्वों से बना है। इनमें पृथ्वी, जल से उत्पन्न हुई और जल अग्नि से उत्पन्न हुआ: अग्नि वायु से उत्पन्न हुई, वायु आकाश से उत्पन्न हुआ आकाश शब्द (ॐ) ईश्वर के नाम से शब्द महतत्व से पैदा हुआ, और महत्व ईश्वर से उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार इस भौतिक जगत की उत्पत्ती ईश्वर से हुई अथवा वह ईश्वर इस प्रकार पंचभूत जगत के रूप को धारण किये है। लेकिन मनुष्य की बुद्धि इस भौतिक जगत को ईश्वर रूप मानने को तैयार नहीं होती। वेदान्त के अनुसार **''ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या''** का अर्थ है एक ब्रह्म ही सत्य है जिसे तुम जगत कहते हो

वह तुम्हारा इसे जगत कहना मिथ्या है क्योंकि यह जगत जगदीश्वर का ही साकार स्थूल रूप है। इसे जगत कहना इसको ईश्वर न मानना नितान्त मिथ्या है। भगवान ने गीता में अपने अस्तित्व को प्रत्येक जीव में तथा सम्पूर्ण पंचभूत को ईश्वर रूप बताते हुए कहा है

''ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठिति।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारूडानि मायया।।''

यह सम्पूर्ण पंचभूत ईश्वर रूप है अर्थात ईश्वर से प्रगट ईश्वर ही है और इस ईश्वरमय जगत के सम्पूर्ण प्राणियों जीवों के हृदय में आत्म रूप से निवास करता है। शरीर रूपी यंत्र पर आरूढ़ हुए सब प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से उनके कर्मों के अनुसार भ्रमाता हुआ सब प्राणियों में स्थित है। और फिर भगवान गीता में दूसरे स्थान में समझाते हुए कहते है–

यथाकाशस्थितो नित्यं वायु सर्वत्रगो महान।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय।। (गीता ९/६)

अर्थात– जिस प्रकार आकाश से उत्पन्न हुआ सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा ही आकाश में स्थित है वैसे ही मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं।

इसके बाद भगवान का तीसरा रूप जीवात्मा है। यद्यपि ईश्वर का जीवरूप ईश्वर के विराट रूप के अन्तर्गत है किन्तु जैसा कहा जा चुका है कि विराट रूप में शीघ्र धारणा नहीं बनती, पर भगवान के तीसरे रूप जीव पर श्रद्धा जम सकती है। जीव रूप के ही सिद्धान्त पर शास्त्रों में कहा है कि जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है **''यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे''** मानव शरीर धारी गुरुदेव के शरीर अर्थात् पिण्ड की पूजा यदि भगवद बुद्धि से की जाय तो वह ब्रह्माण्ड की पूजा तथा सेवा होती है।

यह जीवात्मा ईश्वर का अंश होने के नाते ईश्वर ही है– जिस प्रकार यह जगत ईश्वर से प्रगट होने केनाते ईश्वर रूप है ठीक उसी प्रकार यह जीव भी ईश्वर ही है। वेदानत के अनुसार ईश्वर और जीव भिन्न–भिन्न नहीं है एक ही है यथा **''जीवो ब्रह्मना परः''** अर्थात् यह जीव और ब्रह्म अलग–अलग दो नहीं हैं अपितु यह जीव ब्रह्म ही है। यह अज्ञात वंश भौतिक शरीर को मैं मानकर ब्रह्म जीव हुआ है। इसी के कारण वह दुखी भी है। जिस दिन यह अपने को ईश्वर का अंश ईश्वर ही मान लेगा उसी दिन यह दुःखों से व कर्म बन्धनों से छूटकर ब्रह्मरूप हो जायेगा। रामायण में कहा भी है ईश्वर अंश जीव अविनासी।

चेतन, अमल, सहज सुखरासी।
भूमिगिरायो डाबर पानी।।
ज्यों जीव माया लिपटानी।
सो माया वश परौ गुसाईं।।
बधों कीट मरकट की नाईं।

यह नित्य मुक्त आत्मा जो परमात्मा का अंश अर्थात् परमात्मा ही है जो चेतन, अमल सहज ही सुख की राशि होकर, दुःख ही राशि बना हुआ है। यह जीव आत्मा अपने को भौतिक देह मानकर देह का संग करके ही

दुःखी है, नहीं तो आत्मा तो स्वयं ही सुख—रूप है उसे दुःख छू भी नहीं सकता। देह और आत्मा का संग चमार और ब्राह्मण के संग जैसा है। यह चर्म मण्डित देह ही चमार है और आत्मा ब्रह्म होने के नाते ब्राह्मण है।

यह भौतिक जगत जगदीश्वर स्वरूप है और मनुष्य शरीर की उत्पत्ति भी ईश्वर से ही ठहरती है और स्थूल दृष्टि से देखने से भी पता चलता है कि शरीर को माता पिता ने जन्म दिया है और वह माता के उदर में माता—पिता के रज—वीर्य से बना है। किन्तु माता—पिता का रज—वीर्य जो अन्न वे खाते हैं उस अन्न से जल से बना है और अन्न पृथ्वी से पैदा होता है। पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश के सहयोग से अन्न भूमि में पैदा होता है और यह पन्च भूत प्रकृति ईश्वर से उत्पन्न हुई है इस दृष्टि से हमारा शरीर भी ईश्वर का ही हुआ। और हम सबके शरीरों में जो आत्मा है वह परमात्मा का अंश है। संसार में सब कुछ परमात्मा का है अथवा परमात्मा ही है। हमारा वस्तुतः यहाँ कुछ भी नहीं है। परमात्मा से प्रगट हुई पन्चभूत प्रकृति है उससे ही सबके शरीरों का निर्माण हुआ है। इस प्रकार शरीर प्रकृति का अंश है। रामायण में कहा भी है—

''क्षिति, जल, पावक, गगन समीरा।
पन्च तत्व मिलि अधम शरीरा।।''

और शरीर में आत्मा परमात्मा का अंश है। इस प्रकार न हमारा शरीर है और न हम शरीर है। शरीर में आत्मा, परमात्मा का अंश है। न हमारी आत्मा ही है। शरीर—आत्मा—प्रकृति सब कुछ परमात्मा का है। परमात्मा ही सब कुछ है। अतः ईश्वर की वस्तु को ईश्वर को समर्पण करना ही ईश्वर की सबसे बड़ी व सच्ची पूजा है। ईश्वर की वस्तु को अपना मानना सबसे बड़ी बेईमानी व चोरी है। रामायण में कहा भी है

''सब मेरे सवमम उपजाऐ।
सबसे अधिक मनुज मोहि भाए।।''

भगवान श्री राम स्वयं कह रहे है संसार में सब कुछ मेरा है। सब कुछ मुझसे ही पैदा है। इधर शिव पुराण में भी यही बात कही गई है— **''माता देवी पार्वती पिता देवो महेश्वर''** यह सम्पूर्ण जगत भगवान शिव का परिवार है सम्पूर्ण जगत की माता जगत जननी पार्वतीजी हैं तथा जगत के पिता भगवान शंकर हैं। दादुसन्त भी यही कह रहे हैं—

''जाति हामरी ब्रह्म है माता पिता है राम।
गृह हामरा शून्य में अनहद में विश्राम।।

इसलिए ईश्वर के प्रति आत्म सर्मपण का विशेष महत्व है योग दर्शन में भी आया है **''ईश्वर प्रणिध ानाद वा''** इसका सीधा—सीधा सा मतलब है जो जिसकी वस्तु है ईमानदारी से उसकी वस्तु को उसके सौंप देना कहा भी है—

''त्वदीय वस्तु गोविन्द तुम्यमेव समर्पयेत''

आज संसार में ईश्वर के स्वरूप के विषय में जितना भ्रम है उतना किसी विषय में नहीं है। कोई तो ईश्वर को पत्थर की मूर्ति तथा चित्त के चौखट के अन्दर बन्द मानते है ऐसे लोग पत्थर की मूर्ति व चित्र के अलावा ईश्वर को अन्यत्र नहीं मानते इनके अतिरिक्त दूसरे लोग ईश्वर को एक देशीय न मानकर सर्वव्यापी मानते है।

जैसा कि हम पूर्व में बता चुके है कि वह ईश्वर निराकार, निर्विकार, अजन्मा, अलिप सर्वशक्तिमान तथा सर्वान्तर्यामी है। यह ईश्वर का प्रथम निजीस्वरूप है। उसी ने कौतुक वंश (लीला कैवल्य) नाना प्रकार के रूप धारण किए है। जैसा कि वेद वाक्य है **''स सृष्टिकर्त्ता स सृष्टिरवे''** अर्थात् वही सृष्टि कर्त्ता निर्माता है तथा सृष्टि भी वहीं हे। उस निर्विकार निराकार ईश्वर का स्थूल साकार रूप सृष्टि है। जगत है। यह जड़ चेतन जितना दृश्य या अदृश्य जगत है वह सब ईश्वर का ही रूप है। तुलसी दासजी ने कहा भी है–

''जड़चेतन जग जीव जत, सकल राम मय जानि।
वन्दहु सबके पद कमल, सदा जोरि जुग पानि।।''

''सियाराम मय सब जगजानी।
करहुँ प्रणाम जोरि जग पानी।।''

ईश्वर के इन तीनों रूपों के अतिरिक्त ईश्वर का चौथा रूप भाव रूप है। कहा भी है

''जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूरत देखी तिन तैसी।।''

मनुष्य की स्थूल दृष्टि ईश्वर के अतिसूक्ष्म निराकार रूप को नहीं समझ पाती इसीलिए भक्तों की भावनानुसार भगवान अनेक नाम रूप से प्रकट होते हैं। श्रीराम, श्री कृष्ण, विष्णु भगवान, शंकर भगवान, हनुमान आदि ये सब रूप उसी एक निराकार ईश्वर के है। गीता में भगवान कहते है–

''यो यो यां यां तनु भक्त: श्रद्धयाचितुमिच्छति।
तस्य तस्या चलां श्रद्धां तमिव विद धाम्यहम्।।''

अर्थात्– जो–जो मुझे जिस जिस देवता के रूप में पूजता है मै उसी रूप मे उस भक्त की श्रद्धा को दृढ़ करता हूँ। अर्थात् उसी रूप में वह मुझे पाता है।

जैसे विभाग रहित स्थित हुआ भी महाकाश घटों में पृथक–पृथक की भाँति प्रतीत होता है। वैसे ही सब भूतों में एकी रूप से स्थित हुआ भी परमात्मा पृथक–पृथक की भाँति प्रतीत होता है। इसी से देह में स्थित जीवात्मा को भगवान ने अपना सनातन अंश कहा है।

जो व्यक्ति भगवान के चारों रूपों को समझ जाता है उसे निश्चय हो जायेगा कि संसार परमात्मा का विराट स्थूल शरीर है। सम्पूर्ण चराचर जगत भगवान के विराट शरीर में स्थित है और जगत के सम्पूर्ण प्राणियों के अन्दर का परमात्मा आत्मा रूप से स्थित है इस प्रकार संसार में जितने भी जीव हैं वे सब परमात्मा के रूप हैं।

इस प्रकार **''वासुदेव: सर्वमिति''** के सिद्धान्तानुसार सब ईश्वर ही है। अथवा ईश्वर का ही है ऐसा मानकर भगवान के सभी रूपों को अथवा उनके किसी एक रूप की अर्चना वन्दना, पूजा सेवा करनी चाहिए।

यह जगत जगदीश्वर का एकांकी नाटक है जिस मे वह जगदीश्वर ही जगत मंच बना हुआ है और वह स्वयं ही कला व कलाकार हैं वहीं जीव बनकर लीला कर रहा है। लेकिन उस जगदीश्वर की इस अद्‌भुत लीला को कोई दिव्य आँख वाला ही देखकर समझ सकता है। जिसको वह जानना चाहता है वही उसे जान सकता है कहा भी है–

''कणकण में है झाँकी भगवान की।
किसी सूझवाली आँखी पहचान की।।

* * *

लीलाधारी श्री प्रभुजी परीक्षा भवन में निरीक्षक बने

लेखक–मोहन लाल अग्रवाल, लखनऊ

कुमारी कुसुम जिसका विवरण सुभाष वर्मा ने जून के अंक में "सीवन ग्राम की चमत्कारिक घटना नामक लेख में कर चुके हैं। इस बच्ची के माता–पिता बाबा जयगुरुदेव के शिष्य हैं। ये लोग अपनी बच्ची कुसुम को प्रायः कहा करते थे कि तू पढ़ती लिखती नहीं है परीक्षा सिर पर आ गई है तू दिन रात जब देखो तो विद्यालय से लाई बाबाओं की पूजा–आरती व उनके सामने आँखें बन्द किए बैठी रहती है। बोर्ड की परीक्षा है बिना पढ़े लिखे क्या ये बाबा तुझे पास करा देंगे। इम्तहान में तो पास तू खूब मन लगाकर पढ़ेगी तभी होगी। इम्तहान में यह तेरा पूजा पाठ ध्यान काम नहीं देगा। इसके उत्तर में कु. कुसुम कहती कि मुझे उस पर पूर्ण विश्वास है जिनकी मैं पूजा करती हूँ वह पास ही नहीं सब कुछ कर सकते हैं।

'कु. कुसुम ने हमको बताया कि प्रथम दिन हमारे योग विद्यालय से ५ कि. मीटर दूर पड़े परीक्षा स्थल पर परीक्षा देने गई तो परीक्षा भवन तथा अपने बैठने के स्थान को खोज कर उस पर बैठ गई। प्रश्न पत्र व कापी मिलने पर मैंने आनन्द कन्द श्री प्रभुजी व दादा गुरूदेव जी का मन ही मन स्मरण व ध्यान किया। इसके बाद प्रश्न पत्र को पढ़कर उसको मैं हल करने में लग गई। मेरे हिसाब से प्रश्न पत्र कठिन था लेकिन इसके बावजूद भी मन में उन्हें हल करने का साहस था। कु. कुसुम ने बताया कि प्रश्न पत्र हल करते हुए यकायक मेरा ध्यान मेरी कक्षा में नियुक्त निरीक्षक की ओर गया तो मैं यह देखकर आश्चर्य चकित रह गई कि वह परीक्षक कोई दूसरा नहीं था वह कृपा नाथ श्री प्रभुजी स्वयं ही थे। जो मुझे देखकर मुस्कराते हुए कह रहे हों कि बेटी चिन्ता नहीं करना: जो प्रश्न तुम्हें न आता हो वह हमसे पूछ लेना। आगे कु. कुसुम का कहना है कि यह कहते हुए वह करूणा सागर श्री प्रभुजी मेरे पास आए और अपनी करूणा कृपा का हाथ मेरे सिर पर रखते हुए बोले "कि अब तुम्हें हमसे पूछने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी अब हम तुम्हारे अन्दर ही बैठकर तुम्हें बताते रहेंगे। और यह कहकर वह अर्न्तध्यान हो गये। इस प्रकार परीक्षा समाप्त होने पर जब हाईस्कूल परीक्षा का परीक्षाफल प्रकाशित हुआ तो कु. कुसुम ने देखा कि वह प्रभु की कृपा से प्रथम श्रेणी में पास हुई है। जब घर पर आकर अपने माता–पिता को अपना परीक्षा फल बताया तो उनको प्रथम तो अपनी बच्ची के कथन पर विश्वास ही नहीं आया लेकिन जब उसके साथ गई उसकी सहेली ने बताया तो उन्हें महान आश्चर्य हुआ क्योंकि वो तो समझते थे कि यह पास तो होनी नहीं है। कु. कुसुम के बाबा के चमत्कार को देखकर उसके माता–पिता उसके कमरे की अलमारी में विराजमान श्रीप्रभुजी व गुरूजी के स्वरूप को लम्बा पड़कर प्रणाम किया व लड्डू मंगाकर भोग लगाकर श्री प्रभुजी का प्रसाद सबको दिया। उस दिन से कु. कुसुम का सारा परिवार जय गुरुदेव बाबा की आरती पूजा छोड़कर आनन्दकन्द श्री प्रभु जी की आरती–पूजा करने लगा।

श्री प्रभु कृपा के आधार पर दूसरी घटना कुछ इस प्रकार है। अपने योग विद्यालय के कक्षा दस की छात्रा कु. आशा पर भी कुछ इस प्रकार कृपा हुई। कु. आशा जो कि सीवन ग्राम की ही रहने वाली है। यह बच्ची श्री स्वामी जी के सीवन में होने वाले प्रोग्राम में स्वामी जी के भोजनालय में दिनरात सेवा करती थी। कु. आशा का स्वास्थ्य प्रायः खराब ही रहता था इसे जीर्ण ज्वर की बीमारी थी। कु. आशा इस वर्ष अधिक बीमार रहने के कारण हाई स्कूल की परीक्षा में नहीं बैठ रही थी। उसने विद्यालय के आचार्य से अपनी

परिस्थिति को बताते हुए कहा कि इस बार मैं परीक्षा न दे सकूँगी क्योंकि एक तो बुखार मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है। पहले तो पढ़ने को मन ही नहीं करता जो थोड़ा बहुत पढ़ती भी हूँ तो वह याद नही रहता मेरी याददास्त इतनी कमजोर हो गई है। पास होने की नहीं तो व्यर्थ परीक्षा देने से क्या लाभ। विद्यालय के आचार्य ने उसकी बातों को सुनकर उसे पूर्ण आश्वासन देते हुए कहा कि परीक्षा में अवश्य बैठो क्या पता वह करण कारण कु. कुसुम की तरह तुम पर भी कृपा कर दें। यह सब कहकर आचार्य ने उससे जबरन परीक्षा दिलाई। उन कृपा सागर ने अपनी बच्ची कु. आशा पर भी कृपा की जिसके फलस्वरूप वह हाईस्कूल परीक्षा में द्वितीय श्रेणी में पास हुई।

आनन्द कन्द श्री प्रभु जी व सद्गुरूदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की विशेष कृपा से उनके योग विद्यालय का विभिन्न बोर्ड की परीक्षाओं का परीक्षाफल क्षेत्रीय अन्य विद्यालयों की अपेक्षा सबसे अच्छा रहा। गत वर्ष हाई स्कूल की योग विद्यालय की परीक्षा का परीक्षा फल पचास परसैन्ट रहा था। तथा इस बार की हाईस्कूल की परीक्षा का परीक्षाफल साठपरसैन्ट रहा है। जिसमें हाईस्कूल की परीक्षा में छः लड़कियाँ थीं जिसमें सब की सब अच्छे डिवीजन से पास हुई। इसके अतिरिक्त कक्षा आठ का परीक्षा फल ५५ परसैन्ट रहा और इसी प्रकार कक्षा ५ के छात्रों का परीक्षा फल ६५ परसैंट रहा है।

योग विद्यालय के परीक्षाफल को देखकर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विद्यालय में श्री प्रभु जी व गुरूदेव के सुयोग्य अध्यापकों के परिश्रम के द्वारा बहुत ही अच्छी तरह पढ़ाया जाता है। इससे विद्यालय की ख्याति दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। पिछले वर्ष विद्यालय के छात्रों की संख्या २७५ थी। इस वर्ष विद्यालय में बड़े जोर शोर से दाखिले हो रहे है उनके देखते हुए यह अनुमान लगाया जा रहा है कि इस वर्ष छात्र—छात्राओं की संख्या लगभग चार सौ तक हो सकती है। श्री प्रभुजी की असीम कृपा से विद्यालय में चार कमरे मय १२ फुट के बरामदे के तैयार हो चुके हैं। इससे पूर्व फूस की झोपड़ियों में विद्यालय चलता था। क्षेत्रीय माँग और विद्यालय की उन्नति को देखते हुए अब यह पूर्ण आशा की जा रही है कि एक दो साल में यह विद्यालय इण्टर कालेज हो जायगा। इस बारी जो गुरूदेव जी के योग विद्यालय में हाईस्कूल में पास हुए छात्र व छात्राओं को प्राइवेट के रूप में इसी विद्यालय में पढ़ाकर इन्टर की परीक्षा दिलाने की व्यवस्था की जा रही है।

सीवन ग्राम में बने योगाश्रम व योग विद्यालय की दिन व दिन उन्नति को देखते हुए पाठकों को लगता होगा कि यह सब इतनी जल्दी कैसे संभव हो सकता है और इसके अलावा सीवन ग्राम व आस पास गाँव की जनता को भी महान आश्चर्य है कि हम लोग इतने गरीब हैं कि आश्रम व विद्यालय बनवाना तो दूर रहा हम यह सब सोच भी नहीं सकते। लेकिन हम पाठकों को इस बात का ध्यान दिलाना चाहते हैं कि इन अद्भुत घटनाओं के पीछे एक महान सिद्ध योगीराज श्री चन्द्रमोहनजी महाराज की ब्रह्मलीन होने से पूर्व किया हुआ संकल्प काम कर रहा है। जिस प्रकार भगवान ने **''एकोहम् बहुस्याम्''** के एक संकल्प ने इस विराट विश्व की रचना कर डाली तो क्या गुरूदेव भगवान का संकल्प इतना भी नहीं कर सकता। ब्रह्मलीन होने से पूर्व श्री सिद्ध गुफा सवाई आश्रम में सद्गुरूदेवजी का एक योग विद्यालय व आयुर्वेद औषधालय बनाने का संकल्प था। और यह उन्हीं का संकल्प सीवन ग्राम में पूर्णता को पा रहा है। ✻✻✻

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां हृदये संनिविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृपतो
य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

अर्थात् (श्वेताश्वतरोपनिषद्/४/१६)

यह जगत्कर्ता महात्मा परमदेव परमेश्वर सर्वदा सब मनुष्यों के हृदय में सम्यक् प्रकार से स्थित है, तथा हृदय से बुद्धि से और मन से ध्यान में लाया हुआ, प्रत्यक्ष होता है। जो साधक इस रहस्य को जान लेते है, वे अमृत स्वरूप हो जाते है।

पंचम स्वाध्याय योग शिविर

श्री सिद्धगुफा योग साधक मण्डल, कानपुर के तत्वा– वधान में दिनांक २८ अक्टूबर से ३१ अक्टूबर १९९९ तक पंचम स्वाध्याय योग शिविर का आयोजन किया जा रहा है। साधक मण्डल के वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित इस योग शिविर का आयोजन स्थल आई. आई. टी कम्युनिटी सेन्टर टाइप —२ कानपुर रहेगा।

इस आयोजन में उच्चकोटि के आधुनिक एवं योगनिष्ठ विद्वानों द्वारा सिद्धयोग पर उत्तमोत्तम प्रयोगात्मक क्रियाऐं एवं असाध्य रोगों का इलाज योग चिकित्सा द्वारा किया जायेगा तथा योगमुद्रा में प्रायाणाम, कुण्डिली जागरण, षटचक्र भेदन, ध्यान समाधि आदि गहन विषयों पर प्रकाश डाला जायेगा।

श्री सद्गुरूदेव योगीराज चन्द्रमोहन जी महाराज की कृपा से आयोजित और योग योगेश्वर अनन्त महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के श्री चरणों में समर्पित इस योग शिविर में अपने परिजनों एवं इष्टों मित्रों सहित उपस्थित होकर समस्त गुरु बंधु–बाधव इस सुअवसर का समुचित सतसंग लाभ उठावे।

SIDDHYOG Regd. No. L. AG. 008 सितम्बर 1999

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र

सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

Book-Post

श्री --

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं, मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाहि।।

कठोपनिषद् ।१।२।१२।

अर्थात् : जो योगमाया के पर्दे में छिपा हुआ, सर्वव्यापी सबके हृदयरूप गुफा में स्थित अतएव संसाररूप गहन वन में रहने वाला सनातन है, ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले परमात्मदेव को शुद्ध बुद्धियुक्त साधक अध्यात्मयोग की प्राप्ति के द्वारा समझकर हर्ष और शोक को त्याग देता हैं।

प्रकाशक एवं मुद्रक—विनय गजानन शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिन्टिग प्रेस, बसई कलाँ, ताजगंज, आगरा के लिए राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिन्टिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई, (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326